प्रकाशक—
हिन्दी साहित्य मन्दिर
मेरठ सदर, मेरठ।

पुस्तक का श्रेय यदि कुछ है, तो वह भाई रामेश्वर प्रसाद
'अरुण' को ही है, जिन्हें परीक्षार्थियों की सर्वदा अगाध चिन्ता रहती
जिनकी प्रबल प्रेरणा ही वस्तुतः पुस्तक का कारण भी है।

दोषों से बचना बहुत कठिन है। अवश्य आये होंगे कहीं न कहीं,
और शीघ्रतावश। लेखक उनके लिए क्षमा-प्रार्थी है। भविष्य में,
होने पर, परिमार्जन का विश्वास दिलाता है।

विनीत—
—लेखक

वीरगाथा काल

प्रारंभिक परिचय

प्रश्न – हिन्दी क्या है ? संक्षिप्त परिचय दो।

उत्तर—हिन्दी वर्तमान में भारत की सर्व-प्रमुख, सर्वाधिक-व्याप्त और सर्वसम्मत राष्ट्र-भाषा है। इसको थोड़े बहुत उच्चारण-भेद या अन्य रूपों की भेद के साथ भारत की लगभग ३० कोड़ की जन-संख्या ४–६ प्रान्तों में बोलती है। पहिले देश भाषा या 'भाखा' के नाम से प्रचलित इस भाषा का हिन्दवी या हिन्दी नाम मुसलमानों ने रक्खा था।

अपभ्रंश के पश्चात् हिन्दी ही वस्तुतः सच्चे रूपमें भारत की प्रतिनिधि भाषा रही है, जिसमें हमारे (भारत के) समय समय पर परिवर्तित होते हुए परिवेशों का, सामाजिक दशा का स्पष्ट प्रतिबिम्ब वर्तमान है। अपभ्रंश से हिन्दी का सीधा सम्बन्ध होता है, अतएव परम्परा में भी यही अपभ्रंश की उत्तराधिकारी हुई। इस उत्तराधिकार को इसने कहां तक निबाहा है, यह इसके आज तक के साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट भास होता है। इसका साहित्य किसी भी काल में उनसे पृथक् होकर नहीं चला। गत एक हजार वर्षों की भारतीय समाज की परिवर्तमाण दशा का हिन्दी-साहित्य में स्पष्ट और उज्ज्वल चित्र है, जो कि इसके (हिन्दी के) जातीय या [illegible] का [illegible]। यही हिन्दी भी प्रतिनिधि राष्ट्र-भाषा की [illegible] इस [illegible] इस जैसी अन्य विशेषताओं से ही प्रमा- [illegible] [illegible] में राष्ट्र भाषा [illegible] का [illegible] भारतीय [illegible]

प्रश्न—हिन्दी साहित्य का काल-विभाग किस आधार पर और कि भागों में किया गया है ?

उत्तर—हिन्दी साहित्य के काल का विभाग उन विशेष प्रवृत्ति यों के आधार पर किया गया है, जो समग्र-विशेष के साहित्य में उस का अधिकांश रचनाओं में समान रूप से उपलब्ध होती है। अर्थात् यदि समग्र की अधिकांश प्रवृष्ट रचनाओं में वीरता की भावनाएं अधिक होती हैं तो चाहे उस काल में १०० में २५ प्रतिशत अन्य प्रकार का साहित्य उपलब्ध होता हो तो भी हम उसे वीरकाल ही कहेंगे क्योंकि उसमें अधिकांश रचनाएं वीर रस की हैं।

इस आधार पर हिन्दी साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया है; १ आदि-युग (वीर गाथा काल) १०५० से १४०० तक, २ मध्य (भक्ति काल और रीतिकाल) १४०० से १९०० तक, ३, आधुनिक (गद्यकाल) १९०० से आज तक। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास सुविधापूर्वक, सरलतापूर्वक और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे २ प्रवृत्तियों के आधार पर उपर्युक्त तीन भागों में बांट दिया गया है। कोई कोई आचार्य इस एक हजार या नौ सौ वर्ष के काल को वीर-गाथा, भक्ति,रीति और गद्यकाल के नाम से पृथक् २ चार भागों में विभक्त करते हैं। अन्तर कुछ नहीं।

वीरगाथा काल

प्रश्न—वीर गाथाकाल के भारतीय समाज की धार्मिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

उत्तर—[illegible]

ाय का सर्व-प्रथम ग्रन्थ उपलब्ध होता है ।

उत्तर—इस काल में दो भाषाएं उपलब्ध होती हैं, एक अपना रूप खो चुकी हुई अपभ्रंश या प्राकृताभास और दूसरी सार्वदेशिक भाषा के रूप में विकसित होकर अपभ्रंश का स्थान लेती हुई देशभाषा या हिन्दी। प्राकृत के बाद अपभ्रंश का राज्य रहा, बोलचाल में भी और साहित्य में भी। किन्तु बाद में आकर वह केवल साहित्य की ढकती उतरती हुई माया रह गई थी। बोलचाल के लिए आम लोग देश भाषा का ही आश्रय लेते थे। लेकिन धर्म, नीति, शृंगार और अन्य व्याकरण ग्रन्थ आदि साहित्यिक ग्रन्थ अधिकांश अपभ्रंश में ही होते थे। अधिकतर विद्वान् और पण्डित लोग देश भाषा में लिखना हीन समझते थे। देशभाषा में ग्रन्थ-प्रणयन (रचना) प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् भी अनेक विद्वान् कवि लोग अपभ्रंश को ही विशेषता देते थे।

देश भाषा में लिखने वाले लोग भी अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए कोई अधिक कोई कम उसमें अपभ्रंशकी पुट दे देते थे। यह प्रणाली वीरगाथा-काल के अन्त तक भी बराबर बनी रही, हालांकि अब तक देश-भाषा भी साहित्यिक उपयोग के योग्य हो चुकी थी और उस में कई अच्छे अच्छे रासो काव्य और शृंगार भक्ति योग पर ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। देशभाषा में यद्यपि चन्द से पहिले ही छोटी मोटी मुक्तक रचनाएं, धर्म नीति और शृंगार के विषय की लिखी जाने लगी थीं, पर रूप की स्थिरता हमें देश भाषा में चन्द के काल में ही मिलती है। वहीं से उसका रूप स्थिर और व्यवस्थित हुआ प्रतीत होता है। आगे चल कर, राजपूतों का काल होने के कारण देश-भाषा में राजस्थानी के शब्दों की प्रधानता स्वाभाविक ही थी। कवि, चारण लोग अपने अपने आश्रयदाता राजाओं की स्तुति और वीरता के गान जब गाते थे तो उनकी भाषा में राजस्थानी शब्दों और रूप का अधिक रहना स्वाभाविक ही था। मुसलमानों के साथ संघर्ष के साथ-साथ देश भाषा का भी विस्तार हो रहा था। पर क्योंकि इस समय [illegible] प्रधानतया वीर रस वीर था इस लिए भाषा में भी ओजगुण की मात्रा बढ़ती रही।

प्राकृताभास (प्राकृत जैसी प्रतीत होती हुई) या अपभ्रंश (क्योंकि [illegible] इस
आने पर प्राकृत के शब्द प्राकृत से बिगड़ी और रूप में आ ([illegible]
जाते हैं), नाम दिया गया। समय आने पर बोलचाल की यह [illegible]
(प्राकृताभास) इतनी प्रसिद्ध हुई कि साहित्य में भी [illegible]
प्राकृत को उखाड़ कर उसका स्थान ले लिया। क्योंकि [illegible]
अब जन-साधारण से बहुत दूर जा चुकी थी। बहुत [illegible]
तक फिर अपभ्रंश या प्राकृताभास का ही राज्य रहा। बोलचाल [illegible]
साहित्य दोनों में इसी का प्रयोग होता रहा। किन्तु उपर्युक्त भाषा [illegible]
के अनुसार एक ओर अपभ्रंश का साहित्यिक रूप कुशल साहित्यिकों के
में पड़कर उत्तरोत्तर मंज कर परिपुष्ट होकर साधारण जनता के लिए [illegible]
होता गया, और उधर दूसरा बोलचाल का रूप भी जनता की [illegible]
परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार अपने भिन्न किन्तु स्वाभाविक [illegible]
में विकसित होता गया। अन्ततोगत्वा दोनों रूप सर्वथा भिन्न हो गये। [illegible]
भ्रंश के इस बोलचाल के रूप को देश भाषा या हिन्दी का प्रारंभ [illegible]
गया है। यही देश भाषा वीरगाथा काल की मुख्य भाषा बनी, जिसमें [illegible]
ने लिखा और अन्य रासो लिखे गये। किन्तु रासो ग्रन्थ देश-भाषा में लि[illegible]
जाने पर भी अपभ्रंश का साहित्यिक आदर अब भी, वीरगाथा काल में [illegible]
बना हुआ था। विशिष्ट शिक्षित विद्वान् पण्डित लोग धर्म, नीति, व्याकरण
योग, काव्य आदि के लिए अपभ्रंश को ही अपनाते थे। स्वयं देश-भा[illegible]
में भी, भाषा—सौंदर्य की दृष्टि से और अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए अप[illegible]
भ्रंश शब्दों का प्रचुर प्रयोग होता था। किन्तु फिर भी समय के प्रवाह [illegible]
विरोध सम्भव नहीं था। अपभ्रंश का स्थान धीरे धीरे देश भाषाएं लेती
रही थीं। फिर भी अपभ्रंश की धारा अविच्छिन्न गति से वीरगाथा काल
अन्त तक बहती रही। इस भाषा में [illegible] रचना [illegible] [illegible]
कीर्तिलता और कीर्तिपताका माना [illegible] है। [illegible]
महत्ता [illegible]) [illegible] एवं
भक्तिकाल साहित्य [illegible] के
रूप में भिन्न [illegible] को [illegible] उनमें से

है। किन्तु अनुमान यह है कि इस देशभाषा का चलन उससे पहिले हुआ होगा। क्योंकि किसी भी भाषा में कविता तब होती है जब उ
चोखा चलन विकास हो चुकता है। इसके बाद के लगभग डेढ़ सौ वर्षों
इसमें कोई गद्यात्मक रचना इस भाषा में नहीं मिलती। अपभ्रंश के अनुकरण
इसमें भी जिसे हुए धर्म, नीति, शृंगार, आदिके दोहे और पद अवश्य मि
हैं इस समय में इसका रूप अस्थिर रहा होगा और यह प्राकृत
अपभ्रंश की तरह ही देश-विशेषों में भिन्न २ होगा। इस समय की
साहित्यिक सामग्री नहीं मिलती। इसके पश्चात् १३ वीं स
प्रथम चरण में लिखे हुए कुछ एक रासोग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें
राजाओं की भाषा काव्य के विशेष उपयुक्त और परिमार्जित है।
होता है कि चन्द के समय तक देश-भाषा का रूप काफी स्थि
चुका था, इसमें कुछ नियम आदि भी बन गये थे और अब यह सा
भाषा समझी जाने लगी थी। किन्तु इसके इस रूप के साथ ही, उसका एक
दूसरा व्यवहार का सर्व साधारण रूप भी धीरे २ विकसित हो रहा था,
जिसमें राजकीयता जरा भी अधिकता होती थी, और जो भाषा व्याकरण
आदि के नियमों में प्रायः प्रथम से स्वतन्त्र थी। देश भाषा के इन्हीं दो रूपों के
नाम इस समय क्रमशः पिंगल और डिंगल प्रसिद्ध थे। अर्थात् साहित्य की पूर्ण
और परिमार्जित नियमबद्ध भाषा पिंगल कहलाती थी, जिस में पृथ्वीराजरासो लिखा गया
और इसका दूसरा साधारण व्यवहार का अपेक्षाकृत कम नियमित रूप डिंगल कहलाता था,
जिसमें भाटों चारणों द्वारा अपने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में
[illegible] के लिये उपयुक्त थे। [illegible]
[illegible]

है किन्तु अनुवाद यह है कि इस वैज्ञानिक का नवम समय [illegible] हो चुका होगा। क्योंकि किसी भी भाषा में कविता [illegible] है तब उसका शीघ्र अनुवाद किया हो चुकता है। इसके बाद के [illegible] हो क्यों की इसे कोई दूसरा [illegible] इस भाषा में नहीं मिलता। [illegible] के अनुसार यह इसमें की [illegible] कोकिल, [illegible] आदि के गाने और [illegible] मिलने है इस [illegible] बड़ा होगा और [illegible] प्राकृत और [illegible] मिश्र [illegible] होगा। इस [illegible] को कोई [illegible] । इसके [illegible] [illegible] की [illegible] के [illegible] मिलने [illegible] अनुवाद [illegible] [illegible] देख- [illegible] [illegible] कम [illegible]

उनके आधार पर कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि उस समय के अधिकांश रचनाकार मनगढ़न्त और कोरी कल्पना से प्रभावित। उनमें ऐतिहासिक तथ्य ढूंढना बहुत कठिन काम है।

यह साहित्य दो रूपों में मिलता है—एक प्रबन्ध रूप जैसे पृथ्वीराज रासो इसी आधार पर इस काल का नाम रखा गया और दूसरा, वीर गीत के रूप में, जैसे, बीसलदेव रासो। इनके अतिरिक्त कुछ फुटकल धर्म, नीति, शृंगार, सूक्तियों, मुकरियों आदि के रूप में उपलब्ध होता है, जिसका यथा स्थान वर्णन आयगा।

✓प्रश्न—वीरगाथा काल में लिखे गये देश-भाषा के मुख्य २ काव्य और उनके कवियों का संक्षेप में पृथक् पृथक् वर्णन करो।

उत्तर—देश भाषा में इस समय दो प्रकार के काव्य लिखे गये-एक प्रबन्ध रूप सुमाण रासो जैसे और दूसरे मुक्तक वीरगीत रूप में बीसलदेव रासो। इन सब ही काव्यों का विषय प्राय एक जैसा ही। अपने आश्रय-दाता राजा लोगों के शौर्य, पराक्रम उनके अनेक विवाह और उनके लिये लड़े गए युद्धों का वर्णन है। हा, भारतीय इतिहास विख्यात राजपूत राजाओं के वर्णन में अवश्य देश-भक्ति का प्रवाह पर, इस काल की अन्य सर्वसाधारण रचनाओं में ये ही ऊपर कही प्रवृत्ति पाई जाती है, जिससे इन काव्यों का वास्तविक इतिहास से कोई सम्बन्ध प्रतीत होता। अधिकतर घटनाएं कल्पित घड़ी हुई होती हैं जो कवियों खुशामद मात्र लगती है। ये प्रवृत्तियां न्यून अधिक मात्रा में इस समय के सभी काव्यकारों में प्राप्त होती हैं, यह समझ लेना चाहिये।

इस समय की जो विशेष रचनाएं अभी तक मिली हैं उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है—

[illegible] इस समय [illegible] नहीं [illegible] नया का

अवस्था भी कह सकते हैं। क्योंकि उसमें दोनों के गुण मिलते हैं। य वह संयोग और वियोग दोनों दशाओं में है—विभक्तियां शब्दों से भी आई हैं और संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश के तद्भव शब्दों में मिली हुई घटना-सामग्री अधिकतर कल्पित है, जिसका इतिहास में कहीं पता नहीं। पुस्तक में एक एक छन्द कई कई बार भिन्न भिन्न खण्डों में आत शृङ्गार वर्णन में कहीं कहीं लेखक को बहुत सफलता मिली है, विरे रानी के-विरह वर्णन में। शैली अवस्थानुस्थित, प्रारम्भिक दशा में ग्रन्थ का भाषा के इतिहास की दृष्टि में जितना मूल्य है, उतना साहित्यिक दृष्टि से नहीं।

उदाहरण—दीउउ आनन सागर समंद मणी बहार
हंस गयणी मृग लोचणी नारि॥

इनका काल १२१२, पृथ्वीराज का समकाल है।

२ आल्हाखण्ड, जगनिक—यह भी इसी ढंग का एक वीर गीत रूप काव्य ग्रन्थ है, जिसमें महोबे के चंदेल राजा परमाल के दरबार में बर्त भाट जगनिक कवि ने उसके दो परम वीर सामन्त आल्हा और ऊदल के वीरत्व और प्रेम के चरित्र का बड़ा ओजस्वी और डिंगल (आम बोलचाल की) भाषा में वर्णन किया है। राजा परमाल पृथ्वीराज का समकालीन और कन्नौज राज जयचन्द के प्रधान सामन्त मित्रों में से था। आल्हा और ऊदल दो भाई उसके परम प्रधान सामन्तों में थे जिनकी वीरता का लोहा जयचंद तक मानता था। उन्होंने बड़े बड़े संग्राम जीते थे, अनेक सुन्दरी कन्याएं ब्याहीं और अन्त में पृथ्वीराज के साथ जयचन्द का लड़का [illegible] कारण दुष्ट युद्ध उसमें से ऊदल मारा जाता है और आल्हा सन्यास के बाद ऊदल के पुत्र इन्दल को लेकर योग साधना के लिए चल देता है। जगनिक ने इसके इन समस्त वीर-प्रेम के [illegible] को उसके उपयुक्त भाषा में किया है तो इसमें [illegible] है कि आल्हा [illegible] बना बनाकर सुना जाता है। [illegible] इसमें अन्य [illegible] और सामन्तों की [illegible] आल्हा ऊदल कल्पित [illegible] है और जिसका इति

में दर्शनीय नहीं। इसके नाम से अनुमान किया जाता है कि यह किसी वृहद् संग्रह ग्रन्थ का अंश है और अपूर्ण है-किन्तु इसके विषय में अभी कोई निश्चित मत नहीं मिल सका। वस्तुतः यह पुस्तक भाषा और साहित्य की अमूल्य वस्तु रहती हुई अन्धकार के गर्भ में पड़ी रही। इसके संबंध में और खोज होती रही। भाषा की दृष्टि से निश्चित रूप में नहीं कहा जाता। और यह यह रचना जिस रूप में मिलती है उसकी भाषा पृथ्वीराज के समय की भाषा न होकर कुछ आधुनिक है, जिसके समझने में प्रायः कोई साधारण दिक्कत नहीं होती सर्वसाधारण को। यों, भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं और नहीं ऐतिहासिक दृष्टि से है। फलतः उपरोक्त ऐतिहासिक दृष्टि होते हुए भी उनके लिए दृष्टि का इसमें वर्णन किया गया है वह अधिकतर कल्पित है, ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता। एक उदाहरण देखिये—

दुनी मलामी दोनों दल में घुंघना रही मरग मंडराय।
कोंचे घुरी दोनों दल में, रण में होत लगा घमसान॥

इस ग्रन्थ का काल सं० १२२० माना जाता है।

पृथ्वीराज रासो, चन्दबरदायी—लगभग एक लाख पद्यों, २१ समयों और छत्तीस अध्यायों में शृंगार और वीररस का अद्भुत और वृहद् यह ग्रन्थ इस काल की सर्व प्रमुख रचना है। इसके कर्ता चन्दबरदायी को महा कवि की उपाधि दी गई है। चन्द की जन्मभूमि लाहौर थी और वे महाराज पृथ्वीराज के सखा सामन्त और राजकवि थे, जो हर समय और हर यात्रा में प्रायः उनके साथ ही रहते थे वे कई भाषाओं-संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश आदि के ज्ञाता थे और [illegible] शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे [illegible]

वृत्तान्त दिया है। रासो के अनुसार, दिल्ली के राजा अनंगपाल के सुन्दरी और कमला नाम की दो लड़कियां थीं, जिनमें से सुन्दरी का ब्याह कन्नौज के राठौर राजा से हुआ जिससे जयचन्द ने जन्म लिया और दूसरी कमला का अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के साथ विवाह हुआ, जिससे पृथ्वीराज उत्पन्न हुआ। निःपुत्र अनंगपाल ने वृद्धावस्था में पृथ्वीराज को गोद ले लिया जिससे जयचन्द शत्रुता करने लगा जो आखिर तक चलती रही। पृथ्वीराज के बड़ा होने की, प्रेम की, विवाहों की इसमें अनेक गाथाएं हैं। ईर्षालु जयचन्द राजसूय यज्ञ करता है, जिसमें पृथ्वीराज के न आने पर उसकी मूर्ति बनाकर द्वार पर खड़ा कर देता है। जयचन्द की पुत्री संयोगिता का पहले से पृथ्वीराज में प्रेम होने के कारण उसने वरमाला मूर्ति के गले में डाली, जिससे नाराज होकर उसके पिता ने उसे एक गुप्तस्थान महल में नजरबन्द कर दिया जहां से पृथ्वीराज अपने सामन्तों की सहायता से उसे उड़ा ले गया और बड़ा घमासान युद्ध करता हुआ देना पड़ा और सामन्तों के भारी नुकसान के साथ दिल्ली पहुंचा। ऐश में दिन बीतने लगे। ऐसे ही समय शहाबुद्दीन से लड़ाई छिड़ी। वह कई बार पहले भी चढ़ाई करके हार के जा चुका था। पृथ्वीराज ने उसे अनेक बार पकड़ कर उदारतावश छोड़ दिया था। अब के उसके साथ जयचन्द भी मिल गया था। इस बार पृथ्वीराज हारा और बन्दी बनाकर गजनी ले जाया गया। वहां उसकी आंखें निकलवा दी गईं। कुछ समय पश्चात चन्द भी वहां पहुंचा और तरकीब से अन्धे पृथ्वीराज के शब्द वेधी बाण [illegible] जिससे रासो की कथा समाप्त होती है। [illegible] का ग्रन्थ [illegible] न को संक्षिप्त [illegible] अन्धे में

[illegible] है। [illegible] अस्वीकार [illegible]

उत्तर—इन्हीं कारणों से पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता के विषय में सन्देह किया जाता है।

१. रासो के कथानक की घटनाएं, सोमेश्वर का अर्णोराज की पुत्री से विवाह, पृथ्वीराज का गौर जाना, राजा रणधीर का पृथ्वीराज का मारा खीम होना आदि, इतिहास में नहीं मिलतीं।

२. इसकी भाषा कई सदियों में समय समय पर लिखी गई जान पड़ती है, अतः यह मूल पुस्तक नहीं हो सकती।

३. इसके सन् सम्वत् इसी काल के अन्य इतिहास ग्रन्थों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि के अनुसार नहीं मिलते। उनमें बहुत अन्तर है, आदि आदि।

किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी पृथ्वीराज रासो अपने काल की प्रतिनिधि और सबसे परिपक्व रचना है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता जयचन्द के दरबार में वर्तमान एक कवि के आधार पर चन्दबरदायी नाम का एक कवि पृथ्वीराज के सामन्तों में अवश्य था। उसने अपने राजा की स्तुति में यह ग्रन्थ भी अवश्य लिखा होगा। समय के प्रवाह में भाषा कारणों के हाथों में पड़ कर इसके रूप का कायापलट होता गया—सम समय पर क्षेपक अंश भी अवश्य जोड़ दिये गये होंगे। घटनाओं में भी परिवर्तन संभव है। इसी प्रकार संवत् उस समय एक से अधिक प्रचलित थे। कुछ एक इतिहासवेत्ताओं ने चन्द वंश के शासन काल को निकाल कर चन्द कवियों का ऐतिहासिक व्यक्तियों से साम्य बिठाने का प्रयास किया है। संभव है आगे खोज में इस समय की और अधिक सामग्री मिलने से इस विषय में सन्देह दूर हो सके। तो भी रासो जैसे वृहद् उच्च कोटि के काव्य ग्रन्थ को अनैतिहासिक कह कर काम नहीं चल सकता। इसमें उस समय की आत्मा पूर्णतया प्रतिफलित हुई है। और नहीं इसका सर्वांश इतिहास-विरुद्ध है। वस्तुतः तो अभी इस विषय में बहुत छानबीन की आवश्यकता है।

इस समय बने रासो की परम्परा में आगे हम्मीररासो का नाम आता है, जो हम्मीरदेव की स्तुति में है।

रचनाएं इस काल की अन्य फुटकल रचनाएं कौन सी हैं, जिनकी भा[illegible]
पिंगल या डिंगल नहीं ?

उत्तर—रासो ग्रन्थों की पिंगल और डिंगल भाषाओं के अतिरि[illegible] देश-भाषा के बोलचाल के दो और रूप भी विकसित हो रहे थे, एक [illegible] जिसमें विद्यापति ने कृष्ण राधा के प्रेम वर्णन के कुछ पद लिखे [illegible] दूसरा पश्चिमोत्तरी जिसमें खुसरो ने लिखा।

अबुलहसन अमीर खुसरो—अमीर खुसरो के पूर्वज बलख[illegible] तेरहवीं सदी के प्रारम्भ में आकर एटा जिले के पटियाली गांव में आ[illegible] थे। खुसरो बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि थे। ये अरबी, फा[illegible] हिन्दी के विद्वान थे, संस्कृत से भी पर्याप्त परिचय रखते थे। इन्होंने [illegible] दिल्ली के [illegible] दरबारों में अपने जीवन में दिल्ली के [illegible] [illegible] की इन्होंने सेवा की थी। ये [illegible] बहुत ही उदार हृदय थे। इन्हें हिन्दी और उसके साहि[illegible] विशेष प्रेम था। दूसरे, अब मुसलमान यहां बस चुके थे, अतः [illegible] समझदार उदार मुसलमान यह अनुभव कर रहे थे कि [illegible] मुसलमान परस्पर मिल जाएं। इसी उद्देश्य से मुसलमानों [illegible] देश भाषा का ज्ञान कराने के [illegible] खुसरो ने खालिकबारी नाम का [illegible] [illegible] 'हिन्दी' के प्रति इनके हृदय में बहुत आदर [illegible] [illegible] में किसी बात में कम [illegible] [illegible] है। इन्होंने देश भाषा के बोल[illegible] [illegible] की लिखी है। [illegible] साहित्य। इन्होंने कु[illegible] [illegible] हैं इनमें से एक [illegible]

[illegible] की जावे।
[illegible] ॥ (खिसरवी

बन रहे थे। हिन्दी में सर्व प्रथम यह धारा ज्ञान को लेकर चली जि
कबीर मुख्य हुए। ये लोग ईश्वर और जीव का मुख्यतया ज्ञान के द्वा
सम्बन्ध मानते थे और ज्ञान द्वारा ही मुक्ति मानते थे। इस धारा
प्रवर्तक कबीर माने जाते हैं।

इसी प्रवाह के पश्चात् या साथ ही साथ कुछ मुसलमान सूफी भी
भी एक नई पद्धति पर काव्य-रचना कर रहे थे। ये थे भी सन्त ही, एकेश्व
मानते थे, पर वे जीव और ईश्वर का सम्बन्ध प्रेम का मानते थे, और उसी
द्वारा ईश्वर की उपासना और अन्ततोगत्वा प्रेम के द्वारा ही मुक्ति
(लौकिक स्थूल बन्धन-रहित्य या जीवन्मुक्त दशा से छुटकारा) की प्राप्ति
में विश्वास करते थे। इनमें अधिकांश या विशेष आदित्य हिन्दू थे। ये
दोनों (ज्ञान मार्गी और सूफी) धाराओं का आधार एक ही था, अर्थात् एकेश्व
वाद आदि दार्शनिक सिद्धान्त।

इसी आध्यात्मिक प्रवाह की एक धारा परमात्मा के सगुण रूप
आधार को लेकर चली। यह ईश्वर और जीव का भक्ति (यह भी रति
ही रूप है किन्तु इसमें आदर और श्रद्धा विशेष होती है—अतएव देवता
विषयक रति को भक्ति या भाव कहा है।) का सम्बन्ध मानकर च
थे। इस सगुण धारा की एक शाखा ईश्वर के रामरूप को लेकर चली
जिसमें प्रमुख भक्तशिरोमणि हुए और दूसरी कृष्ण रूप को लेकर चली, जि
प्रमुख सूरदास हुए।

यह सब साहित्य या आध्यात्मिक साहित्य था इसमें कृत्रिम सौन्दर्य
बनावट नाम को न था। यह साधारण जनता के हृदय की सच्ची पु
की [illegible] थी। [illegible]

दिल्ली में हुमायूं, अकबर जैसे उदार शासकों का राज्य कायम हो चुका था। पर्याप्त प्रान्त. स्थापित हो चुका था। राजे रजवाड़े भी अब आपस में नहीं लड़ते थे। मुगलों का आतंक सर्वत्र हो चुका था। हाँ, राजपूताने में राणा जैसे विद्रोही रह रह कर खड़े हो रहे, जिस पश्चात में आगे चल कर राजसिंह, शिवाजी, छत्रसाल आदि हुए। किन्तु यह संघर्ष सार्वदेशिक न रहा था और साहित्य में तो प्रायः वीररस पर लिखना केवल परिपाटी निर्वाह मात्र रह गया था। [illegible] की कविताओं से सारे [illegible] को जगाने में [illegible] थे। वीरता के लिए कोई स्थान भी नहीं रह गया था। मुगलों के [illegible] किसी राजा की वीरता का वर्णन करना (मुगल साम्राज्य में द्रोह हुए) विद्रोह समझा जाता—राजा और भाट दोनों दण्ड पाते।

भक्तिकाल के समय में जैसे भारत की राजनैतिक शक्ति छिन्न [illegible] हो गई थी, उसी प्रकार उसकी धार्मिक दशा भी। प्रबल पाखंड [illegible] बौद्ध धर्म को उखाड़ कर अपने अद्वैतवाद का प्रचार करके शंकराचार्य [illegible] निर्गुण के [illegible] आदि का [illegible] आदि भी [illegible] शिक्षित वर्ग में जरूर चलता रहा, पर सर्व साधारण के लिए यह [illegible] समझ ही रहा। [illegible] धर्म का [illegible] हो चुका था, ज्ञान अज्ञान के कारण [illegible] का विषय बन गया था, [illegible]

[illegible]

स्वामी रामानन्द को बताया है। ज्ञानाश्रयी शाखा के अनुयायी ब्रह्मवादी हैं, वे ज्ञान के द्वारा शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति में विश्वास करते हैं और सदा अपना जीवन सरलता पवित्रता से बिताना चाहते हैं। वे ईश्वर और [illegible] का ज्ञान द्वारा सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे सगुण रूप में विश्वास [illegible] करके "निर्गुण सगुण से परे" राम में ध्यान लगाते हैं और योग मार्ग विश्वास करते हैं। ज्ञान के द्वारा ही वे हिन्दु मुसलमान और छुआछूत जाति-पाति और धर्मकृत भेद भाव से ऊपर रहकर सब में समदृष्टि रखने उपदेश देते हैं। परिश्रम द्वारा, ज्ञानपूर्वक सम और प्रेम भाव से जी यापन करने में ही उनके मत से जीवन की पूर्णता है। इस पथ के सा में कवित्व की अपेक्षा, धर्म-समाज-सुधार की भावनाएं विशेष मिलती वस्तुत ये कवि सुधारक और सन्त कवि थे। इस पंथ के प्रवर्तक मा कबीर हैं। इन्हीं के (धर्म के, मत के, चरित्र के और भाषा के आदर्शों को मानकर इनके पंथ में आगे अनेक ज्ञानाश्रयी सन्त कवि जिनमें सब नहीं तो अधिकतर अपने को इनका शिष्य मानते थे।

कबीर के आदर्श को सामने रख इस धारा के आगे के प्रायः सभी कवियों ने ईश्वर माया, जीव, सृष्टि, लोक-व्यवहार-नीति, गुरु, शब्द और ज्ञान वैराग्य आदि विषयों का इन्हीं की शैली में अपना अपनी विशेषताओं के साथ निरूपण का प्रयास किया है।

कबीर—इनका जन्म मरणकाल [illegible] माना जाता है। इनकी जाति के विषय में कुछ निश्चय नहीं [illegible] का ही पता है। पंथ में प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर [illegible] ब्राह्मणों को स्वामी रामानन्द के [illegible] में गर्भ में [illegible] पर उस नवजात शिशु को [illegible] नामक [illegible] में [illegible] में उसे नीमा नी [illegible] मुसलमान जुलाहे [illegible] पाल पालकर बड़ा किया [illegible]

[illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible] के अपने गुरु [illegible] के [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ओर रखेंगे। ग्रन्थों में इन्होंने विशेषतया दोहे का प्रयोग किया है और पद छिखे हैं जिनका आधार राग रागनियां हैं।

कबीर साहित्य को विषय या शैली के आधार पर और भी दो तीन भेदों में बांटा जा सकता है। कुछ तो जिसमें उन्होंने अपना सिद्धांत मत-मतिरादर आदि किया और के, मत के, तत्वों के जगत के रहस्यों का वर्णन किया देता है जिसमें उन्होंने प्रचलित शैली का कुछ खण्डन किया है। इस में जगत [illegible] देना भी है [illegible] को [illegible]

और रमैनी। ग्रन्थों में इन्होंने विशेषतया दोहे का प्रयोग किया है और पद जिसे हैं जिनका आधार राग रागनियाँ हैं।

कबीर साहित्य को विषय या शैली के आधार पर और भाई भी दो तीन भेदों में बांटा जा सकता है। कुछ तो ऐसा है जिसमें उन्होंने अपना सिद्धांत मत-प्रतिपादन आदि किया है, ईश्वर प्रेम के, भक्ति के, तत्वों के अलग के रहस्यों का वर्णन किया है। कुछ ऐसा है जिसमें उन्होंने प्रचलित अनेक मत-मतान्तरों का सामाजिक कुरीतियों का कटु खण्डन किया है। इस में उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को नहीं छोड़ा है। कुछ ऐसा भी है जिसमें उन्होंने अपने आध्यात्मिक आनन्द को अनुभूतियों का अनेक रूपों में, उलटबांसी और रूपक में वर्णन किया है। और कुछ ऐसा है जो रहस्य मूलक वर्णन है, जिसे उलटबांसियां भी कहते हैं, ऐसा साहित्य अत्यल्प है।

प्रश्न—कबीर की भाषा की दृष्टि से आलोचना एक विचार दीजिये।

उत्तर—कबीर की भाषा दूषितभाषा का बड़ा रूप लिये हुए है जिसका दोष उस समय परिवेशगत प्रवृत्ति में प्रचलित था और जो उन्हें यात्रासंगों साधों और सुनने आदि से एक जबरदस्त साधन हुआ था। कबीर ने इस भाषा को अधिकांश पूर्णरूप से ग्रहण किया। भाषा का बड़ा प्रारंभिक था अतएव अव्यवस्थित भी। वही भाषा कबीर की भाषा में भी है। वह अव्यवस्थित, व्याकरण के नियमों से अनेक बार हटी, अनेक भाषाओं के शब्दों से भरी है, शब्दों के रूप इष्ट के कारक, प्रत्यय, विभक्ति आदि भी भिन्न २ भाषाओं के हैं। किन्तु इसमें कुछ ऐसे दुर्गुण भी वह समर्थ है, उसमें सुनने की शक्ति है, व्यंग्य है चुटकी और रस है। ऊबड़-खाबड़ अवश्य है पर कबीर की अपनी विशेषता लिये हुए है।

प्रश्न—कविता की दृष्टि से कबीर साहित्य पर विचार बताइये।

उत्तर—कविता की दृष्टि से कबीर साहित्य में बहुत कमी है। उन्होंने काव्य-रचनाओं का उल्लंघन किया है। उनके रूपक अटपटे हैं, उनमें अस्वाभाविक और उलझाव आकस्मिकपन है, चित्र अटपटे हैं।

अनेक काव्यगत दोष आ गये हैं। इसका कारण कुछ तो कबीर का काव्य नियमों से अनभिज्ञ होना है और कुछ प्राचीन परिपाटियों से विद्रोह व स्वतन्त्रता की उनकी प्रवृत्ति भी है। उन्होंने जान बूझ कर भी काव्यनियम की अवहेलना की है (क्योंकि वस्तुतः उनका उद्देश्य कविता करना नहीं था, कविता उनके लिए एक शक्तिशाली साधन का काम दे रही थी।) और उनको उनका ज्ञान भी नहीं था। तो भी काव्य के बाह्य स्वरूप को छोड़ कर जहां तक उसके आन्तरिक भाव तत्व का प्रश्न है, वह कबीर-साहित्य में पूरा मिलता है, विशेषतः वहां उन्होंने अपनी अनुभूतियों का वर्णन किया है और उनके पदों में। इसके इलावा, उनके दुश्मन हैं, दमादार हैं और शक्ति है। वस्तुतः तो कबीर ज्ञानी सन्त और कुशल पारखे थे और कवि पीछे।

कबीर के साहित्य के एक दो उदाहरण देखिये:—

चलती चाकी देखि के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत रहा न कोय॥
सूरा सोई सराहिये लड़े धर्म के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहै तऊं न छांड़ै खेत॥
आदि आदि॥

प्रश्न—इस शाखा के अन्य कवियों का संक्षेप में परिचय दो।

उत्तर—इस, सिद्धान्त, साहित्य और भाषा शैली की दृष्टि से आगे आने वाले प्रायः सभी सन्त कवि लगभग एक जैसी विशेषता रखते हैं। इन्होंने कबीर के समान, शब्द, ब्रह्म, योग, माया, जीव, जगत्, नाम, गुरु का गुण गाये हैं और नीति, लोक व्यवहार, आडम्बरों की निन्दा, लोभ, ऊंच नीच के भेद-भाव की निन्दा और शुद्धता, सरलता, परिश्रम प्रशंसा आदि पर भी लिखा है। उनमें कुछ एक ने अपने अपने थोड़ी सी भिन्नता के साथ अलग अलग मत भी चलाये, पर वे सब कबीर-पन्थी कहलाते हैं। सब निर्गुण ब्रह्म के उपासक, आडम्बरों से दूर, सत्य आचरण-पूर्ण जीवनयापन द्वारा ज्ञान-उपासना करने का उपदेश देते हैं। इनमें से कुछ एक मुख्य निम्न हैं:—

गुरु नानक—ये सम्वत् १५२६ में जिला लाहौर के तलवंडी... कालूचन्द नामक खत्री के घर उत्पन्न हुए थे। ये जन्म से वैरागी थे। इनका घर के काम-काज, व्यवसाय में मन नहीं लगता था। ये घर से देशाटन को निकल पड़े और मक्का मदीना, ब्रह्म ऋषिया तक घूम कर वापिस आये थे। इनकी कबीर से भेंट हुई और उनके अनुयायी बन गये। वहां से आकर ये हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक संघर्ष से ग्रस्त पंजाब में अपने मत का प्रचार करने लगे। आगे चल कर ये ही सिख सम्प्रदाय के आदि-गुरु हुए। कबीर की तरह इनकी वाणी भी सीधी-सादी, सरल स्वाभाविक सौन्दर्य लिये, कृत्रिमता से दूर है और इन्होंने भी हद, अनहद, आदि योग के अङ्गों, जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म, शब्द, जगत् का दोहों, शब्दों चौपाइयों में वर्णन किया है। जगत् को मिथ्या बता कर, आडम्बर और भेद-भाव से ऊपर रह कर, सत्य, न्याय, दयापूर्वक आचरण करते हुए जीवन बिताने का आदेश दिया है। इनकी भाषा में पंजाबी की अधिकता स्वाभाविक रूप से आ गई है, वैसे वह कबीर वाली ही है। उदाहरण —

इस दम दा मैनू की वे भरोसा, आया आया न आया न आया।
यह संसार रैन दा सुपना, कहीं देखा कहीं न दिखाया॥

दादूदयाल—ये १६०१ में अहमदाबाद में उत्पन्न हुए थे। इनकी जाति के विषय में सन्देह है, कोई इन्हें ब्राह्मण और कोई चमार या धुनिया कहते हैं। इनकी रुचि भी जगत् की ओर नहीं थी। इनके गुरु का पता नहीं, पर इन्होंने अपनी कविता में कबीर का नाम बहुत बार सादर लिया है, इसलिये विश्वास किया जाता है कि ये कबीर को गुरु मानते थे। १६६० में इन्होंने जयपुर राज्य में एक भराने की पहाड़ी पर शरीर छोड़ा। इन्होंने भी अपनी वाणी में शब्द नाम, गुरु, ईश्वर आदि का वर्णन किया है। इनके मत में तर्क की अपेक्षा हृदय की अनुभूति का अधिक महत्व है। एक उदाहरण लीजिये —

आदि न अन्त मध्य कुछ हमारा।
है पर रहित पर्ण ब्रह्म पूरा॥

उत्तर—कवित्व की दृष्टि से निर्गुण संत साहित्य का चाहे ऐसा महत्व न हो, पर समय की आवश्यकता को पूरा करने का वहाँ तक प्रश्न है इसको देन अमूल्य है। मानवीय आत्मा के वर्ग विभेद और आडम्बर को इन्होंने (संतों ने) दूर करके हृदय और अंतरात्मा को बल दिया। इस कार्य का उत्तरदायित्व अनुभव किस वर्ग से था, उत्तरदायित्व इस ओर आकृष्ट नहीं पाया। पर सर्वसाधारण के प्रति जो उनका जो उत्तरदायित्व था, वह मूल्य नहीं। मानवीय विकास में संत साहित्य का विशेष योग है।

— ★ —

प्रेममार्गी शाखा

(सूफी कवि)

प्रश्न—हिन्दी में प्रेम मार्गी सूफी साहित्य का एक साधारण किंतु संक्षिप्त परिचय दो।

उत्तर—जब मुसलमान इस देश में आकर बस गये और उनका राज्य स्थापित हो गया तो उनके साथ अनेक मुसलमान महात्मा फकीर लोग भी आये थे और यहीं रह गये थे। उनमें अनेक सिद्ध वाले महात्मा भी थे। उन्हीं में कुछ सूफी फकीर या मुसलमान रहस्यवादी कवि भी थे। उन्होंने यहाँ आने पर अपने और यहाँ के दार्शनिक सिद्धान्तों में बहुत एकता पाई। वे यहाँ की आध्यात्मिक, यौगिक सिद्धियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। दूसरे, उनके अतिरिक्त अन्य समझदार उदार मुसलमान भी थे, जो यह जानते थे कि मुसलमानों को अब यहाँ के लोगों में ही रहना है इसलिए उन्होंने सबने दोनों हिन्दू मुसलमान धर्मों का और संस्कृतियों का भेद-भाव मिटाकर विजेता और विजित में एकीकरण या समन्वय उपस्थित करने का चेष्टा की। सूफी लोग इस कार्य में सब के आगे आये क्योंकि उनके सिद्धान्तों में संकुचितता को स्थान नहीं था। वे तो एकेश्वरवादी और ईश्वर को अकलुष प्रेम का आगार देखते थे—सभी के प्रेम का अवसर उन्हें सर्वत्र नजर आता था। वे लौकिक प्रेम में भी अलौकिकता देखते थे और लौकिक प्रेम के द्वारा ही अलौकिक प्रेम को

मुनु हो गली है। सखियाँ गली होती हैं। कथन में शिव, मनोज
गण में चार सरदंग की बोधना है। एक उदाहरण :—

दखिनी पुनि पेंती हो गरि जाई
कुबरनी सब को सखि जाई॥
बारह बर भीतर बर होई।
घर बाहर को हरे न जोई॥

संकेत—इसके काल का कुछ पता नहीं। पर क्योंकि जायसी ने इ
अनेक बार अपनी पुस्तक में नाम दिया है इस लिए निश्चित है कि
पूर्व का इनके बाद काल में हो। इन्होंने मधु मालती आख्यान को-क
लिखा, जिसकी एक अच्छी अपूर्ण प्रति प्राप्त होती है। इसकाव्यारंभ की
कथानक की संक्षिप्तता, वर्णन वैचित्र्य, प्रकृति वर्णन और रस अलंकार
दृष्टि से अधिक सुन्दर है पर बड़ा आकार देकर लिखना है। इसका कथा
संक्षेपतः इस प्रकार है —

कलेसर के राज कुमार मनोहर को सपिरी सोते हुए को मदनसार की
कुमारी मधुमालती के पास ले आती है। दोनों एक दूसरे को देख
परस्पर आसक्त हो जाते हैं। परिरी फिर राजकुमार को घर छोड़ आती
राजकुमार विरह में व्याकुल हो उसकी खोज में योगी बन निकलता है।
में समुद्र में पोत टूट जाने पर अंगलों में भटकता है। वहीं वह चित्र
पुर की राज कुमारी पद्मा को एक राक्षस से बचाता है, पर उसके कि
कहने पर भी उससे विवाह को तैयार नहीं होता। मेला के बहाने दोनों
मालती फिर मिलता है किन्तु इस मिलन से क्रुद्ध होकर मधुमालती
मां उसे शाप से पक्षी बना कर उड़ा देती है। उसे एक ओर तारा
सामक राज कुमार पकड़ ले जाता है किन्तु उसकी कथा सुन उसे उसके
पिता के पास ले जाकर आता है और वह मंत्र बल से फिर अपने असली रू
आजाती है। तारा चन्द्र उससे विवाह को राजी नहीं होता। अन्
मन हर को बुला कर लाती है। एक दिन राजकुमार तारा चंद्र
कुलने प्रेमा को देख कर उसे ले आता है। बस यहीं से आगे प्रति
है। एक उदाहरण दीजिये —

कीमत का गई है, विशेषतः जहाँ उनकी आवश्यकता और लाभदायिकता
दोष कर कम पूजों या मोटर पदार्थों की सूची निकाले लगते हैं।
देशीय होने के कारण वहाँ की वस्तुओं के प्रति अपनी जानकारी बढ़ाने की आवश्यकता के अतिरिक्त इस प्रवृत्ति का और क्या कारण हो सकता
इस काव्य का इन्हें उपयुक्त कवि माना जाता है। वस्तुतः वह कथा यहाँ
यह है।

सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्व सेन की पुत्री पद्मावती चित्र-सारिका की
पर बोलने वर के अभाव में विवाह नहीं हुआ था। उसके पास एक हीरा-
मणि नामक सुन्दर तोता था। वह एक बहेलिये के हाथ में पड़ कर
चित्तौड़ के एक ब्राह्मण के हाथ में बिक गया, जिसके पास से चित्तौड़ के
राजा रत्न सेन ने एक लाख रुपए में खरीद लिया और महल में आने पर
नायक अपनी पटरानी के पास भेज दिया। रानी के सामने एक दिन उसने
पद्मावती की प्रशंसा की तो वह ईर्षा से जल गई और उसने तोते को मारने
के लिए एक दासी को दे दिया। दासी ने उसे न मार कर राजा को सारी
सारी कहानी बताई। राजा तोते से पद्मावती की प्रशंसा सुन, उसके प्रेम
में पागल हो, योगी बन, 16 हजार अन्य योगी राजपूतों को साथ ले
सिंहल-द्वीप की ओर तोते के बताये मार्ग से चला। सिंहल-द्वीप में एक
शिव-मन्दिर में डेरा डाला। तोते से खबर पा पद्मावती शिव-दर्शन
के बहाने मन्दिर में आई। राजा देखकर मूर्छित हो गया।
रात को शिव मन्त्र के बल से गढ़ में जाने की उसने चेष्टा की तो पकड़ा गया
और फाँसी का दण्ड मिला। सुन कर उसके अन्य साथी योगी गढ़ पर चढ़
दौड़े। गन्धर्व सेन ने हार कर अपनी कन्या पद्मावती का ब्याह रत्नसेन से कर
दिया और वे सब उसे लेकर चित्तौड़ आये। वहाँ एक दूत ब्राह्मण ने दिल्ली
आकर अला-उद्दीन को पद्मिनी के रूप गुण की प्रशंसा सुनाई। वह बेताब हो
गया। रानी सुन्दी पद्मिनी को प्राप्त करने में जब वह सफल नहीं हुआ तो
उसने चढ़ाई करना और युद्ध में सफलता करना। निमन्त्रण में शीशे में उसने
पद्मिनी का प्रतिबिम्ब देखा तो उस पर भी मोहित हो गया। रत्नसेन जब
[illegible] तक आया तो उसे वह चतुरता पकड़ कर

किया है और मरुप में कावुल, बदख्शा, गुजरात, सिंहल द्वीप इत्यादिस्थान आदि का वर्णन किया है जिससे इनके भौगोलिक ज्ञान का भी अनुमान होता है। जायसी या अन्य सभी सूफी कवियों के समान इनकी कहानी का भी आधार आध्यात्मिक प्रेम है, जिसकी मार्मिक व्यंजना इन्होंने एक लौकिक कल्पित प्रेम कथानक के रूपक द्वारा की है। काव्य की कथा का सार निम्न लिखित है।

नैपाल का राजकुमार सुजान अपने मित्र मूलों क, साथ रूपनगर की राजकुमारी की वर्षगांठ का उत्सव देखने गया था चित्रशाला में राजकुमारी चित्रावली का चित्र देख कर मोहित हो गया और अपना चित्र भी वहीं टांक कर वापिस आ गया। बाद में हर दम उसकी चिन्ता में घुलने लगा। उधर चित्रावली ने भी राजकुमार क चित्र पर आसक्त हो उसकी तलाश में जोगियों के रूप में आदमी भेजे। सुजान ने अपने मित्र मूला की गद्दी में एक अन्न सत्र (सदाव्रत) खोल दिया और वहीं रहने लगा। संयोगवश एक जोगी से भेंट होने पर वह उसके साथ रूपनगर आता है और शिव-मंदिर में राजकुमारी से भेंट करता है। दुर्भाग्य से फिर उसका साथ छूट जाता है और वह उसके विरह की पीर में जगलों में भटकता हुआ सागर गढ़ की राजकुमारी कमलावती की फुलवारी में जा विश्राम करता है। वह उसके सौंदर्य पर आसक्त हो, जब रानी से काम नहीं बनता तो छल से चोरी व इलजाम में उसे कैद करा देती है। इसी बीच में कमलावती को हर ले जाने के लिए एक और सोहिल नामक राजा चढ़ आता है, जिसे हरा कर अन्त में सुजान कमला से विवाह करता है और उसे ले गिरनार को चल देता है। फिर चित्रावला के एक जोगी के साथ सुजान रूपनगर पहुँचता है जोगी उसे विरह कर राजकुमारी को खबर करने जाता है तो रानी द्वारा कैद कर दिया जाता है। उधर सुजान जोगी के न आने पर पागलों की तरह चित्रावला ढूंढने लगता है। राजा उसे मारने को हाथी छोड़ता है पर वह उसे मार डालता है। अन्त में दोनों का प्रेम पहचान राजा दोनों का विवाह कर देता है सुजान उसे लेकर रास्ते में से कमला को भी लेता

हुआ राजा सुरथ अपनी राजधानी में लौट कर शेष तक सुरक्षापूर्वक राज
करता है। एक उदाहरण देखिये:—

ऋतु वसन्त नूतन तन फूला, वहं वहं भौंर कुसुम रस भूला।
आदि कहां लौ मंगल हमारा जेहि दिनु दमन वसंत उजारा॥

प्रश्न—हिन्दी में सूचा साहित्य का क्या महत्व या मूल्य है?

उत्तर हिन्दी में इन लोगों से पहले अधिकता ज्ञान, योग, धर्म
...ने आदि का वर्णन होता था। किंतु इन लोगों ने मानव मन का अनूठा
भक्ति प्रेम को, लौकिक को और कल्पना अलौकिक को मानो करेना
आधार बनाया। इसका देवतादि विषय का प्रेम मार्ग की भक्ति की
लाता है। अतएव कहा जा सकता है कि इन्होंने ही हिंदी में भक्ति की
साहित्य बहाने में दृढ़ योग दिया। इन्होंने शिरोमणि प्रेमरस वर्णनों
गौरव अलौकिक रूप में, प्रेम रूप में स्वर्गीय का भेद का मार्ग
को सम्मानित करनालिक रूप में, प्रेम रूप में स्वर्गीय का भेद का मार्ग
प्रशस्त किया, जिससे संसार में सर्वत्र प्रेम ही प्रेम दिखाई दे। इसका
हिन्दी साहित्य को यह एक भारी देन है।

रामभक्ति शाखा

प्रश्न—रामभक्ति साहित्य का सार और संक्षिप्त परिचय दीजिये।

उत्तर—इस शाखा का साहित्य का उदय स्वामी रामानन्द से होता
है। ये श्री सम्प्रदाय के रूप में हुए रामानुज के द्वारा भक्ति का
प्रचार होने के उपरान्त में इसका स्थान ... के लिखित
... रामानन्द
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...

अनवरत आक्रमण और अत्याचार, वीरियों के योग पाखंड और ... के ज्ञान वैराग्य और जगत् के प्रति मिथ्यात्व भावों के प्रचार ने समाज सर्वत्र अव्यवस्था उत्पन्न कर दी थी। मनमानी हो रही थी, ... दिनों दिन क्षीण होता जा रहा था और आक्रान्ता समाज बढ़ रहा समाज के आदर्श लुप्त हो गये थे, विकृत रूढ़ियां रह गई थीं। ऐसे में भगवान् के लोक-रंजनकारी और समाज के आदर्श रूप राम की ... ही उपयुक्त हो सकती थी। स्वामी रामानन्द ने उसी को अपनाया। ने उनसे राम नाम लिया किन्तु उसके निर्गुण रूप का ध्यान किया। ... भक्त तुलसी-प्रमुख कवियों ने राम के वाल्मीकि वर्णित लौकिक रूप ... गाया और देश भाषाओं में, भक्ति में डूबकर प्रचलित छन्दों में रामचरि गाया, जिससे वह सर्वजन सुलभ हो सके। कहना नहीं होगा, अपने ... कार्य में वे पूर्ण सफल रहे।

इस शाखा के कवियों के सामने काव्य की दो भाषाएं चल रही अवधी और ब्रज। एक तीसरी कबीर वाली भाषा भी थी जो अभी उपयुक्त नहीं थी। अवधी में जायसी लिखित दोहा चौपाई पद्धति का ... साहित्य वर्तमान था। अवध राम की जन्म-भूमि भी थी। रामभक्त कवियों ने स्वभावतः मुख्यतया अवधी और उसमें वर्तमान दोहा चौपाई पद्धति को ही अपनाया। इस काल के तुलसीदास सब बातों में अगुआ थे।

प्रश्न—हिन्दी साहित्य में रामभक्ति साहित्य का क्या स्थान या मूल्य है?

उत्तर—हिन्दी के स्वर्ण काल का यह राम भक्ति और कृष्ण-भक्ति साहित्य स्वर्ण-साहित्य है, जिससे बढ़कर या जिसका जोड़ का भी सा... लिख और सुन्दर अन्य साहित्य हिन्दी अभी तक उत्पन्न नहीं कर सकी है। यह साहित्य वस्तुतः एक पीड़ित पददलित निराश्रित असहाय जनता की अन्तर्यन्त के प्रति करुण पुकार है, जो इतना ऊंचा उठा और विस्तृत हुई कि आजतक दूर से दूर गांवों में भी राम और कृष्ण के गान सुनने को मिलते हैं। इस ... उनकी दुखी आत्मा ... दिये जो ...

मरण संवत् १५५४–१६८० मानते हैं और कुछ जार्ज ग्रियर्सन प्रभृति प्रचलित किम्वदन्तियों के आधार पर जन्म संवत् १५८९ मानते हैं।

गोस्वामी जी यू० पी० बांदा जिले के राजापुर गांव के ब्राह्मण थे। मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण माता पिता ने इनका त्याग कर दिया था और इन्होंने बाबा नरहरिदास के साथ काशी जाकर उन्हीं के आश्रम में पालन-पोषण और वहां वर्तमान एक श्री शेषसनातन के आचार्य से वेद वेदाङ्ग पुराण, न्याय, दर्शन, काव्य आदि की शिक्षा की। १५ वर्ष के अध्ययन के पश्चात् ये राजापुर लौटे और इनके पिता आत्माराम दुबे और माता हुलसी (जिनका जिक्र इनके समकालीन ने किया है) ने एक भारद्वाज गोत्र की ब्राह्मण—कन्या से विवाह कर दिया। भावुक युवक तुलसी को अपनी पत्नी के बिना पल भर चैन नहीं पड़ता था। उसके मातृगृह जाने पर एक बार आध घंटा न बिताने पर नदी तैर कर उसके पीछे जा पहुंचे। उसने उन्हें ताने से समझाया कि यदि ये उसके प्रेम में इतने मतवाले न होकर कहीं भगवान् के प्रेम में इतने विभोर होते तो उनका कल्याण हो जाता। तुलसी के बात लग गई और वहीं से वे वैरागी हो गये। उन्हों ने वर्षों देशाटन किया। अयोध्या काशी मथुरा वृन्दावन इनके विशेष प्रिय स्थान रहे, जहां ठहर ठहर कर इन्होंने अपने ग्रन्थ लिखे। अपनी परिपक्वावस्था में ये स्थायी रूप से काशी में टिक गये थे जहां इन्हों ने १६३१ में अपना रामचरित मानस महाकाव्य लिखा। यहीं १६८० में काशी में फैली महामारी में इनका देहान्त हुआ। प्रसिद्धि के अनुसार इनने चित्रकूट में सूरदास मिलने आये, उनके निमंत्रण पर फिर ये श्री मथुरा आये। कहते हैं इनका रहीम और मीरा से भी पत्रव्यवहार हुआ था।

सिद्धान्त—तुलसी रामानन्द के मत के अनुयायी, विशिष्टाद्वैत के मानने वाले वैष्णवों के भांति इनका भी मत है कि आत्म समर्पण का मोक्ष प्राप्ति में विशेष काम है। सर्वदा पवित्रता पूर्वक मन में समर्पित रखने वाले आत्म समर्पण भक्त को रामायण [illegible] और पुराण लिखे हुए [illegible] के भी अनुकरण पर है

भाषा—उनके समय में दो काव्य-भाषाएं प्रचलित थीं—अवधी और ब्रज। ज्ञानमार्गी सन्तों की भाषा का रूप स्थिर और काव्य के अनुकूल था। तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों में संस्कृत की मधुर शब्दावली समान अधिकार से दोनों में लिखा। अवधी में उन्होंने रामचरित जैसा महाकाव्य लिखा तो ब्रज में विनय पत्रिका, कृष्ण गीतावली लिखी। भाषा परिमार्जित, विषयानुरूपिणी, ललित, सुगठित और है। अपनी भाषा और कला किसी में भी तुलसीदास जी ने नहीं आने दी।

रामचरित मानस—यह उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें तुलसी ज्ञान का, वैराग्य का, भक्ति का, उनके प्रेम का, दया का, महानता दीनता का, उनके जीवन के चरम निष्कर्ष का, उनके पाण्डित्य और का पूर्ण विकास है। यह वस्तुतः सार्वभौमकाव्य है, जिसका प्रभाव और काल की सीमा से परे है। यह राम के समस्त जीवन का और रससिद्ध कवीश्वर द्वारा उपस्थापित पूर्णाङ्ग चित्र है। कथानक मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण होते हुए भी तुलसीदास ने भावना के अनुरूप उसका समास-व्यास आदि (परिवर्तन परिवर्द्धन) है। भाव, भाषा और काव्य कला की दृष्टि से यह ग्रंथ पूर्ण है। कवि प्रतिभा का विकास सर्वतोमुख है। इन्होंने इसके अन्दर जायसी आदि दोहा चौपाई पद्धति का अपनाया है और बीच बीच में सोरठा, कवित्त, सवैया आदि का भी प्रयोग यथा स्थान विभिन्न काण्डों के अन्त में किया है, जैसा कि महाकाव्य के नियमानुसार छन्द-भेद होना चाहिये। समस्त प्रचलित काव्यरीतियों अलंकारों आदि का समुचित रूप किया है। यह वस्तुतः समस्त जीवन का अत्यन्त पूर्ण चित्र है जो विश्व के लिए आदर्श है। ज्ञान-वैराग्य और योग में पड़ कर सामाजिक जीवन में जब अनास्था उत्पन्न हो गई थी, भाई बहिन, पति पत्नी, पिता पुत्र, भाई भाई, माता पुत्र, राजा प्रजा, और विश्व गुरु, सब के कर्त्तव्य शून्य हो चुके थे और सब के [illegible] हो चुका था, समाज जर्जर हो गया था, तब सच्चे [illegible] मानव ने इस रचना द्वारा, उसे

...सका कलकी रूप दिखाया और उनके सामने एक आदर्श उपस्थित किया। ...स दृष्टि से रामचरितमानस का गूढ़ साहित्य, समाज देश और जाति सबके ...लए अमूल्य है। इसमें रस रसीले हैं, कविता बड़ी रसील है, भाव गहरे और चित्र उज्ज्वल हैं। कविता के साथ साथ इसमें हमें तुलसी के सारगर्भित ...ाण्डित्य का भी विभिन्न स्थलों में प्रचुर दर्शन होता है। अध्यात्म-...रामायण का अंगद-रावण और का रावण-बालि सम्वाद अद्भुत है।

विनय-पत्रिका—इसमें तुलसी ने गीतों में विभिन्न छन्दों में अपने समय की, समाज की, देश की, राष्ट्र की, धर्म की, दुर्दशा का मार्मिक और वास्तविक वर्णन किया है। अन्त में भगवान् के पास अर्जी भेजी है कि सुधि लें और यह पाप ताप, महामारी का कलेश शान्त करें। इसकी भाषा संस्कृत मिश्रित शुद्ध मधुर ब्रज भाषा है।

कृष्ण-गीतावली—रामायण के अतिरिक्त तुलसी दास जी ने कृष्ण की लीला भी गीतों पदों के रूप में, ब्रज भाषा में गाई है। कृष्ण गीतावली उनके उन्हीं पदों का संग्रह है। कहते हैं उन्हें कृष्णजी ने भी राम रूप होकर दर्शन दिये थे। ऐसी ही किम्वदन्तियों के आधार पर सूर तुलसी की चित्रकूट में भेंट होनी भी कही जाती है, जिन के निमंत्रण पर तुलसी ...र मथुरा आये थे।

इनके अतिरिक्त उनके समस्त साहित्य-समुद्र का अवगाहन करना सहज नहीं। उनका साहित्य छोटे मोटे ग्रन्थों के रूप में बहुत बड़ा है। तुलसी अपने समय के हिन्दी साहित्य-जगत् के नेता थे, जो कि समय की उस समय की ...समें बड़ी आवश्यकता की पूर्ति थी। उदाहरण के लिए—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिं पर बचन न जाई॥

...के राम चरित मानस का यह प्रसिद्ध पद याद कीजिये।

इनके अतिरिक्त [illegible] इस शाखा में और भी कवि हुए [illegible] तुलसी के [illegible] [illegible] इनके द्वारा [illegible] इनके [illegible] भी कोई नहीं [illegible] है। [illegible] में इनके नाम [illegible]

स्वामी जगन्नाथदास— ये जयपुर राज्य के सकलना नाम के ग्राम के रहने वाले मुखमी दास के सम-कालीन १६३१ के लगभग वर्तमान थे। इन्होंने सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर भी इन्होंने राम के गीत गाये। इनकी श्याम-मंजरी, राम ध्यान मंजरी आदि और फुटकल पद लिखे। इनका एक

यहो राम मुखमी सोवन, मैं कवि कन्द अन्ध नहीं कोवन।
अब मारन मारन मैं जान्यो, इन्द्री पोषि पुरान बान्यो॥

सामादास— ये जगन्नाथ के शिष्य और सकली ग्राम के रहने वाले थे। इनकी मुखमी जी से भेंट भी हुई थी। इनका काल १६४० के लगभग अनुमान किया जाता है। इन्होंने रूपकलाल सारंग ग्रन्थ में संगीत की कविता में संक्षिप्त रूप में श्रीनिधि या प्रसन्निधा लिखी। इसको १६६६ में राम ध्यान मंजरी विवरण में दीक्षा की। इनका एक उदाहरण

जैसा काम्य निबन्ध कहो मत कोटि रामायण।
इक अक्षर उच्चरो अल्प इन्दादि पुराण॥
अब अगम सूत्र वेद बहुरि श्रीमा विस्तारी।
रामदास रसमय रहन अहर्निशि मन धारी॥

राम चन्द्र चौहान— १६६६ में रामायण सप्त सारंग लिखा जो वेद भाव प्रकाश का सारंग है, इस ग्रंथ के प्रकाशित नहीं। सारंगों लिखे इस में केवल यह है कि सकल राग-रागनी कल्पवृक्ष के रूप में लिखे है। एक उदाहरण—

जो भारत भाषा कल गाया।
वर्णी आदि दृष्ट की माया।
रंडि भाषा कर मुनि जन सेवा।
अन्य रह कवित्व के देवा॥

दलेल राम—इन्हें भी १६६० में संस्कृत के अनुसन्धान के आधार पर लिखी में एक ग्रन्थ लिखा। यह भी इस ग्रंथ के प्रकाशित नहीं। इनका के भक्तजन का आश्रय अवश्य ही है कविताएँ। उदाहरण—

इन्द्र की आई सो रह अमरावती, इन्द्र
पूजो न कल्पवृक्ष कर कर्म कर की,

बेजोड़ वर्णन किया। इनकी भक्ति की भावना सेव्य-सेवक भाव में थी किन्तु उनकी राम या गोपाल आदि की लीलाओं के वर्णन में यह भाव में बदल जाती थी। कृष्ण के विशाल जीवन के इन्हीं मधुरतम को लेकर इन भक्त सङ्गीतिक कवियों ने अपने हृदय की समस्त अनुभूति साथ भाव में डूब कर काव्य लिखा है। विषय के अनुरूप ही मधुर भ भी अब है, जो इन भक्त कवियों की भाव-गंगा में अवगाहन कर पुनी और परिमार्जित हो गई है। इस धारा के सर्वोत्कृष्ट सर्व-प्रमुख सूरदास हैं।

प्रश्न—कृष्ण-साहित्य का हिन्दी में क्या स्थान है?

उत्तर—कृष्ण-साहित्य का भी हिन्दी में वही महत्वपूर्ण स्थान है राम-भक्ति साहित्य का। दोनों साहित्य वस्तुतः हिन्दी के स्वर्ण काल स्वर्ण-साहित्य हैं। दो दोनों के स्वरूप और उद्देश्य में थोड़ा अन्तर अ है। एक संसार को मधुरता से भरना चाहता है तो दूसरा आदर्श व्यवस्था दोनों ही साहित्य एकान्त स्वान्त सुखाय और अन्त समाज के मन अवश्यक और आवश्यक ऐसे की संगत प्रेरणा से ओत प्रोत हैं। इन्होंने के लिए आनंदायक और प्रेमसय रूप का वर्णन किया है उसमें वर्ष के अतिरिक्त में कुशलियों जगाते हुए मिल कृष्ण जाते हैं। अब भाषा की दी साहित्य में ऐसी अभ्यर्थना हुई कि बड़े २ कवियों में उसका मान हो गया फिर तो इसमें साहित्य की धारा अबतक बहती आ रही है। संगीत की और संगीत के पद न मिलते तो यह अधिकतर सूक्त ही रहता—इस अब विभूतियों नामावली (पदावली) का ही रहता। कृष्ण अतिरिक्त अन्य अनेकों देवियों मुसलमानों के भी मन पर छा कर दोनों ने दोनों इसकी इसी सम्बन्धिता ने सुरक्षित रखा है जैसे कि हिन्दू समाज पर भी विश्व में अद्वितीय है और हिन्दी काव्य आलोचना की एक अमूल्य निधि

प्रश्न—सूरदास का जन्म स्थान, जन्म काल, [illegible] बताइए।

उत्तर—सूरदास और अधिक दोनों का आपस में [illegible] अलग-अलग दिया है। किन्तु सेन का आधार मानकर यह अधिक से अधिक सत्य प्रतीत होता है, कुछ दूर [illegible] कि आपने में इस का अन्त

अवश्य ये उनसठ इन्हीं को स्थान दिया जाता है। ये वस्तुतः कवि और भक्त थे। इनकी कविता में भक्ति की अपेक्षा रसिकता अधिक इस रसमयता में अनायास इनका शृङ्गार वर्णन कहीं कहीं भक्ति के की सीमा से बाहर निकला भी प्रतीत होता है। वैसे ये शिव और के उपासक थे और कृष्ण का वर्णन इन्होंने शृंगार के देवता होने के किया है। किन्तु, अलौकिक आलम्बन होने के कारण इनकी गणना को भक्ति कवियों में ही स्थान दिया गया है। इनका काल १४ १५६० है। इनके ऊपर विष्णु स्वामी निम्बकाचार्य आदि का प्रभाव था।

वल्लभाचार्य--माधव सम्प्रदाय में वल्लभाचार्य का सर्व प्रमुख है। क्योंकि विशेष रूप से कृष्ण भक्ति का प्रचार का श्रेय इन्हीं को है। इन्हीं के चलाये शिष्य-सम्प्रदाय ने कृष्ण भ चरम सीमा तक पहुँचाया था। ये १४३५—१५८० के काल में थे। तिरुमल विष्णु सम्प्रदाय के थे। इन्होंने भक्ति की नवीन, अपनी विशेषता स्थापना की और अपने मत-प्रतिपादन के लिये संस्कृत में वेदान्त सूत्र भाष्य आदि चार ग्रन्थ लिखे। ये अपने शुद्धाद्वैत वाद के अनुसार कृष्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म में कोई भेद न मान कर कृष्ण को ब्रह्म रूप थे। जगत के व्यावहारिक रूप को उसी का पसारा मानते थे। इनके मत में जीव न तो किसी प्रकृत कृपा की रचना है और न किसी [illegible]

विरह का सूर ने बड़ा सूक्ष्म और गहन वर्णन किया। विषय का ज्ञा उपस्थित हो जाता है। सूर की भक्ति सख्य-भाव की तो थी ही इस जहाँ वे कृष्ण की बाललीला, रासलीला या प्रणय का वर्णन करने लगते वहीं वह सख्य भाव से भी आगे बढ़ जाती है, जिसमें ठठोली भी होती हँसी भी है और मजाक भी है और साथही तीखे ताने और व्यंग्य भी सूरदास ने भगवान को हर तरह की सुनाई है।

इन्हीं बातों में सूर तुलसी से पृथक् हैं। तुलसी ने राम के अद्भुत लोक रूपों का भी वर्णन किया है, किन्तु उतने विशिष्ट रूप में नहीं जितने में कि उनके अन्य कर्तव्य-पालक, मर्यादापालक, लोकरंजक रूप और दुष्टदल रूप प्रतिपालक स्वरूपों का। उन्होंने राम के सम्पूर्ण जीवन का उपयुक्त वर्णन किया है, किन्तु सूर ने कृष्ण के विशेषतः बाललीला, प्रेम, विरह आदि वर्णन किया है और उसमें वे तुलसी से बढ़ गये हैं। सूर में जो तल्लीनता आत्म-विस्मृति मिलती है वह तुलसी में नहीं। रामचरितमानस में के सामने मर्यादा हर दम खड़ी रहती है, उसे उसका ज्ञान नहीं भूलता भक्त और भगवान् के बीच का भेद नहीं मिटता। जहाँ कहीं मिटने भी लगता है, वहाँ तुरन्त कवि ध्यान करा देता है कि लीलाधाम पुरुषोत्तम हैं, लीला कर रहे हैं—रस का प्रवाह भक्ति में बदल जाता है। सूर ने स्वयं रस प्रवा में डूब कर लिखा है, मर्यादा भी रखी है और वही प्रभाव पाठक पर पड़ा भी है। भक्ति व्यापक रहती है। तुलसी के राम मर्यादापालक हैं। जगत् में आकर उन्हें पतित जगत को मर्यादा के पालन करने की चिन्ता रहती है। विपत्ति में, कष्ट में, वे रोते भी हैं, पर धीरज से काम लेते हैं। ऐसा प्रतीत होता जैसे सर्व शक्तिमान मानवीय सीमाओं में पड़ा विवशता में फड़फड़ाता है। तुलसी ने लौकिक अलौकिक दोनों रूपों के मध्य समन्वय रूप आदर्श जीवन का चित्र उपस्थित किया है। सूर के कृष्ण ऐसे नहीं थे। वे मर्यादा का उल्लंघन भी अधिक करते हैं। बालकपन को छोड़ कर वे कभी नहीं रोये धुली में पूरा मुखमण्डल भर लिया हो। ऐसा लगता है जैसे सम्पूर्ण संसार का ऐश्वर्य अपनी समस्त प्रकृति अपनी खेती बनी अपना मुह जोह रहा है समस्त अंग रस प्रेम में मग्न दिखते हैं। वे योगी भी हैं, भोगी

और भक्ति पर विवाद करती है, जिसका आधार तर्क पर अधिक आश्रित है, जिससे थोड़ी शुष्कता आ जाती है।

कुम्भन दास—ये परमानन्द के समकालीन और परम सन्तोषी महात्मा वृत्ति के थे। अकबर के बुलाने पर ये सीकरी गये किन्तु बाद में आपने। आपका यह पद प्रसिद्ध है —

सन्त को कहा सीकरी को काम।
आवत जावत पहनियाँ टूटीं बिसरि गयो हरि नाम॥

चतुर्भुज दास—ये कुम्भन दास के पुत्र और विट्ठल जी के शिष्य थे। इन्होंने द्वादश यश, भक्ति का मनोरथ और भक्ति प्रताप नामक तीन ग्रन्थ लिखे। एक उदाहरण—

जसोदा! कहा कहौं हौं बात।
तोर सुत के करतब मोपै कहत कहे नहीं जात॥

छीत स्वामी—ये भी विट्ठल जी के शिष्य और मथुरा के पण्डा थे, जिनके पोरबंज जैसे व्यसित यजमान थे। इनकी कविता का उदाहरण —

हे विधना तोसों अबर पसार मागौं।
जनम जनम दीजो यहि ब्रज को बसबो॥

गोविन्द स्वामी—ये भी विट्ठल जी के शिष्य और संगीत नायक थे। गोवर्द्धन पर्वत पर इनकी बगाई कदम्ब-बनी अब तक प्रसिद्ध है। उदाहरण —

प्रात समय उठि जसुमति जननी
गिरधर सुत को उबटन्हवावै।
करि सिंगार बसन भूषन सजि
फूलनि रचि रचि पाग बनावति॥

कृष्ण दास—ये शूद्र जाति के किन्तु विट्ठल जी के परम प्रिय शिष्य थे और उनके मंदिर के प्रधान पुजारी थे। इन्होंने वृत्त वल्लभ चरित्र ग्रन्थ लिखा। इनके अन्य ग्रन्थ अनेकांत और प्रेम रत्नाकर विवरण नामक प्राप्य हैं। एक उदाहरण —

ललित त्रिभंगि चाल पै चलिकै चितुक चारु गति डहकन्यौ।

परमानन्द दास—ये कनौजिया ब्राह्मण और वल्लभ जी के शिष्य थे। १६०६ के लग भग हुए। इनके फुटकल पद बड़े मधुर होते थे, जिन्हें ये जो बड़ी सभाओं में सुना करते थे। इनके एक फुटकल पद का अश—

कहा करौं बैकुण्ठहि जाय?
जहं नहिं नन्द जहां न जसोदा, नहिं जहं गोपी ग्वाल न गाय।
जहं नहिं जल जमुना को निरमल और नहिं कदमन की छांय॥
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।

अष्टछाप के अतिरिक्त इस धारा में अन्य भी अनेक उच्च कोटि के कृष्ण-भक्त कवि हुए, जिनमें से कुछ एक का विशेष विवरण इस प्रकार है।

मीरा बाई—इनका काल १५७२ माना जाता है। ये उदयपुर के राणा भोजराज की पत्नी और जोध पुर बसाने वाले राव जोधा के वंश की पुत्री थीं। इनका जन्म चोकड़ी नामक गाव में हुआ था। विधवा होने के बाद अनेक पारिवारिक क्लेशों से तग आकर इन्होंने चित्तौड़ छोड़ दिया और भक्तवर राव दास से नाम का दीक्षा ली। ये कृष्ण की उपासिका थीं।

इनकी कविता में स्वा'—[illegible] भावों का कोमलता, तन्मयता, और आत्म-समर्पण के भावना कूट कूट कर भरा है। भक्ति की तन्मयता में ये इतना आत्मविस्मृत हो जाती थीं कि कभी २ इनके भाव-वेग में उत्कट शृंगार के भाव होने पर [illegible] कृष्ण की कल्पना करती थीं।

इनकी भाषा में राजस्थानी के शब्दों के [illegible] इस [illegible] देश की निवासिनी होने के कारण स्वाभाविक [illegible] में इनके कविता, माधुर्य के प्रभाव से [illegible] में इनके पद [illegible] गाये जाते हैं। प्रेम वा भक्ति के [illegible] आनन्द [illegible] —

मेरो मन राम-हि-राम रटै।
राम-नाम जप लीजै प्राणी कोटिक पाप कटै।
जनम जनम के खत जु पुराने नामहि लेत फटै।
कनक कटोरे इमरत भरियो, नामहि लेत नटै।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी तन मन ताहि पटै।

रसखान—१६६४ के लगभग हुए। ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। स्वभाव से अत्यन्त रसिक थे। एक बनिये के लड़के पर आसक्त हो गये थे। अन्त में विट्ठल जी के शिष्य होने पर इनकी वृत्ति शान्त हुई और ऐन्द्रिय प्रेम अतीन्द्रिय आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो कृष्ण की भक्ति उतनी ही उद्दाम गति से बढ़ी। ये मुसलमान होते हुए भी कृष्ण के सगुण रूप के अनन्य उपासक थे। भक्ति की यह गहनता इनकी कविता में सर्वव्याप्त है। इन्होंने ब्रज भाषा में अधिकतर सवैये या कवित्त लिखे, जो जनता में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

एक उदाहरण—

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥

हित हरिवंश—ये राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे और वृन्दावन में उनकी मूर्ति स्थापित कर वहीं रहते थे। इनका जन्म १५५९ में मथुरा के पास बादगाँव नामक गाँव में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका संस्कृत राधासुधानिधि और भाषा में हित चौरासी नामक पुस्तक प्राप्त होती है। इनकी भाषा ब्रज है। इन्होंने कुछ स्फुट पद भी लिखे हैं।

हरिदास—इनकी कविता वस्तुतः गाने के योग्य है। ये प्रसिद्ध गायक थे। तानसेन ने इनको अपना गुरु माना था। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के [illegible] थे। किन्तु इनकी कविता के [illegible] उतना [illegible] नहीं [illegible] है।

[illegible]—इनका [illegible] आदर्श [illegible] इनकी [illegible] [illegible] विट्ठल के [illegible]

[illegible] —

[illegible]

तन मन प्राण तिहीं छिन हारे, भली बुरी कुछ दै न विचारे,
ऐसो प्रेम उमंजि है जबहीं दिव ध्रुव बात बनैगी तबही ॥

दरबारी साहित्य

प्रश्न—मुगल सम्राट् अकबर ने हिन्दी साहित्य के अभ्युत्थान में योग दिया ? वर्णन कीजिये ।

उत्तर—जब से हिन्दी की अवतारणा साहित्य में हुई अर्थात् बीर से लेकर, अकबर के दरबार में जो जो कवि गण लेखक शक्ति विद्यमान थे अतएव भारत के गत डेढ़ हजार साल के इतिहास में अकबर-काल, अकबरका, तथा शासन और कला साहित्य-संसार और कवि सब को दृष्टि स्वर्ण काल माना जाता है। अब से पहिले अनेक कवि विभिन्न धाराओं धाराओं का बराबर आता है वह सब बाह्य-परिवेश है, उसका उत्थान परिवर्तन समाज का बदलता हुआ स्वरूप तथा आदर्श के साथ होता रहा। यह साहित्य तुलसी के शब्दों में बहुत स्वान्तः सुखाय की है तो किन्तु इसका प्रत्येक वाक्य [illegible] सदा से कवियों के [illegible] अकबर [illegible] दरबार में [illegible]

हंस मानसर तज्यो चातक चातकी न मिलै अति ।
बहु सुंदरि पतिनी पुरुष न चहैं, न करैं रति ॥
कलमलात शेष कवि गंग मन, अमित तेज रवि रथ खस्यो ।
प्रलयकाल काल भैरव सुवन जबहिं क्रोध करि नंग बस्यो ॥

सेनापति—आपका जन्म १६४६ में अनूप शहर में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप बड़े कुलाल और भावुक कवि थे। आप की भाषा प्रौढ़ और परिष्कृत है और भाषा ललित और सुव्यवस्थित, जिसमें स्थान२ पर सुन्दर अलंकार कवि का भाव व्यक्त करते हैं। आप का प्रकृति-वर्णन विशेषतः वर्षा वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। उदाहरण—

दूध की नदि सेत सारी बरनि पै
उडुगनि के जाल बिलसत दर्पन है।
नखति धरनि जल थल न सुरनि सोभा
छाए की पवरि पंथी पंथी बिरमत है। काँ

नरहरि—इनकी कविता का प्रचलन होकर कवियों ने इनके आधार की स्थापित की थी। इन्होंने 'रामायण' अलंकार संग्रह तथा 'कवित्व-रीति' आदि तीन ग्रन्थ लिखे थे। इनका जन्म १५६६ में और मरण १६८० में हुआ था। कहते हैं, इनके लिखे ग्रन्थों को सुनकर अकबर ने गाकर के कवियों को पुरस्कार दिया था।

कहिबे सिंधु को आहि करि काहि कहै बाहु।
इक सागर सिंधु करहि दक्ष दक्षारि दीन होइ ॥
कहाँ दक्ष सिंधु करहि कहाँ कहि कवित्व दाहरि।
सिंधुहि कवि न होइ बहुत सुकवि कवित्वहि ॥
कर कवि करहि कवित्व सुनी विरचनि की दोनो बात।
कवित्व कौन कवि करि कवित्व हनुमंत कवि कवि जात।

कालिदास त्रिवेदी—संवत् १६६६ कार्तिक के कृष्ण के नरहरिजी और उनके सम्बन्धी कवियों के साथ ये भी [illegible] हुए थे। इन्होंने कालिदास हजारा लिखा था। इनके [illegible] के [illegible] का उल्लेख किया है। [illegible]

दानी थे, अतः अपने पास विशेष संग्रह नहीं रखते थे। परिणाम स्वरूप इ[illegible]
अन्तिम मुसीबत के दिनों में बड़ा कष्ट उठाया। इनके सब पुत्रों में कोई
जीवित नहीं रहा था। १६८२ में इन्होंने शरीर छोड़ा।

रहीम अकबर के नवरत्नों में से एक थे। ये बड़े उदार प्रेमी, दया[illegible]
ज्ञानी, दानी, नीतिज्ञ, कुशल शासक योद्धा थे। इनके साथ ही ये [illegible]
फारसी संस्कृत हिन्दी आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके इन सारे
और विशेषताओं का हमें उनके साहित्य में पूर्ण दर्शन होता है। उ[illegible]
साहित्य इन उपर्युक्त तीनों भाषाओं में मिलता है। फारसी में उ[illegible]
बाबर चरित और कविताओं का संग्रह लिखे, संस्कृत में खेट कौतुक [illegible]
ज्योतिष ग्रन्थ लिखा और हिंदी में रहीम सत सई नामक सात सौ
और सोरठों का संग्रह, बरवै छन्द, नायिका भेद, मदनाष्टक, रास पंचा[illegible]
शृंगार-सोरठा आदि पुस्तकें लिखीं। इनके शृंगार, नीति, कृष्ण [illegible]
पद्य बड़े चुभते हुए हैं। इनका मुख्य [illegible] [illegible] पद्य व्यवहारमें हुए
हिंदी के अवधी और ब्रज दोनों रूपों पर आपका समान अधिकार था
एक उदाहरण लीजिये

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहीम कहै।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] पै कमल [illegible] [illegible] [illegible] है॥ आदि।

गंग—ये अकबर के दरबारी कवियों में एक प्रमुख स्थान रखते थे। [illegible]
के [illegible] [illegible] [illegible] अधिक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चारु विषयों पर [illegible]
लिखा है। उक्ति [illegible] [illegible] [illegible]! इनका [illegible] [illegible] था। ऐसी ही [illegible]
उक्ति से इन्होंने किसी राजा या नवाब को नाराज कर दिया था जिसने [illegible]
हाथी के पाँव तले कुचलवा दिया था। रहीमने इनके द्वारा लिखित [illegible]
प्रशंसित के छप्पय पर, कहते हैं [illegible] [illegible] [illegible] रुपया दे दिया था।

उदाहरणार्थ यहां छप्पय लीजिये —

चकित भंवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फन मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन॥

अंगवर्णन को एक स्वतन्त्र विषय मानते थे—जिस परिपाटी को अनेक कवियों ने अपनाया।

नरोत्तमदास—ये सीतापुर के बारी गांव के निवासी १५४० के थे। इनके सुदामाचरित का निम्न सवैया बहुत प्रसिद्ध है—

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु जाने को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह को नहिं सामा।
आहि (अ

बनारसीदास—जन्म सं० १६४३ में जौनपुर में हुआ। जाति के श्री जौहरी थे। यौवन में शृंगार की कविता लिखी बीसे वह नदी में फ और ज्ञान, नीति, धर्म आदि पर लिखने लगे। इन्होंने बनारसी वि नाटक समयसार, मोक्षपदी, अर्धकथानक आदि कई ग्रन्थ लिखे।

प्रश्न—दर्बारों के प्रभाव में उत्पन्न होने वाले इस शृंगार साहित्य का हिन्दी में क्या स्थान है?

उत्तर—अकबर काल का यह साहित्य वस्तुतः रीति-काल का रूप था। इसी के आधार पर आगे चल कर रीति ग्रन्थों की परिपाटी पड़ी। भक्ति की प्रेम की भावना यहां लौकिक शृंगार में बदल गई राधा कृष्ण के नखशिख के साथ साथ साधारण नायिका के नखशिख ने का और कविताके साथ साथ कविताकी रीति और गुण दोषों पर भी वि करने का मार्ग इसी काल में बन रहा था। यही सारा तत्व वस्तुतः आगे काल में रीति ग्रन्थों और नायिका के नखशिख तथा अन्य प्रसंग के विकसित हुआ। यह भक्ति [illegible]—काल के

में आकर आध्यात्मिकता या भक्ति का काल प्रायः समाप्त हो चुका
केवल इसका नाम मात्र का व्यवहार रह गया था। राधा कृष्ण का
वर्णन होता था, उनकी रास का, जमुना तीर का और संयोग वियोग
भी जिक्र था। पर अब इस सारे वर्णन का आधार शुद्ध मानसिक
भक्ति नहीं था, प्रत्युत सांसारिक विषय लोलुपता था। राग रंग में
राजा लोगों को खुश करके इनसे इनाम पाने के लोभ में कवि लोग
कृष्ण का नाम लेकर उनकी ओट में शृंगार का वीभत्स रसाभास को
तक का अश्लील वर्णन करने तक में नहीं चूकते थे। आगे इतना भी
गया। राधाकृष्ण का नाम कभी भूले भटके कोई कवि ले लेता था नहीं
साधारण लौकिक नायक नायिका के ही रूप-शिख आदि अंगों के
का वर्णन मात्र रह गया था। नायिका के अंगों का कामोत्तेजक वर्णन कर
पर हाथ रखकर हाय हाय करना ही कवि का पुरुषार्थ रह गया था। नायिका
अंगों का वर्णन यद्यपि पहिले भी होता था, किन्तु अब आकर नख-शिख
वर्णन रस का आलम्बन रूप न रहकर वर्णन का एक स्वतन्त्र विषय बन
गया। आंख, नाक, कान, मुंह, अधर आदि पर अपना समस्त कवित्व समा
कर कवि अपने को कृत-कृत्य समझता था। इस नख शिख वर्णन की
पाटी का ही गणेश अकबर काल में बलभद्र मिश्र से हो जाता है। इसी
शिख वर्णन वाली श्रेणी के अतिरिक्त एक और कवियों की श्रेणी
जिन्हें हम आचार्य और कवि दोनों कह सकते हैं। ये लोग संस्कृत ग्रन्थों
आधार पर हिन्दी पद्यों में रस रीति अलंकार आदि के ग्रन्थ लिखते थे
उनके (रसादि के) लक्षण लिखकर उनके उदाहरण के रूपमें फिर आप
करके उसमें जोड़ते थे। अर्थात किसी रस का लक्षण लिखा और फिर
उसके उदाहरण बनाकर लिखने प्रारम्भ कर दिये। रस या परिपाटी
ऐसे लोगों [illegible]

[illegible]

प्रश्न—रीति-ग्रन्थकारों में मुख्य २ का समुचित परिचय दो।

आचार्य केशवदास—आचार्य कोटि के कवियों में आचार्य केशव पहिले आते हैं। इनका काल १६१२-१६७४ माना जाता है। ये [illegible] निवासी और ओरछा नरेश इन्द्रजीत के आश्रित थे।

केशवदास संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् थे। अतएव रसिकता [illegible] संस्कृत की परिपाटी पर काव्य के उपादानों अलंकार आदि का विवेचन [illegible] स्वाभाविक गुण थे। संस्कृत के काव्यकारों में भी वे दण्डी और रुद्रट अनुयायी थे और अलंकार को ही काव्य का सर्वस्वभूत आत्मा मानते इनके कवि प्रिया, रसिक-प्रिया आदि अलंकार ग्रन्थ और रामचन्द्रिका [illegible] काव्य तीन ग्रन्थ मिलते हैं।

आप वस्तुत: आचार्य थे, कवि पीछे थे। आपने रस अलंकार आदि सर्वप्रथम वर्णन किया और उनके उदाहरण रूप कविता लिखी। इनके अनुसार पर ही फिर आगे के आचार्यों ने ग्रन्थ रचना की। कवि की दृष्टि से इनकी कविता साधारण कोटि की है। उसमें भावनाव, [illegible] सहृदयता और उसकी अनुभूति अत्यन्त है। भावों में अस्वाभाविकता, [illegible] में मकड़ता, वर्णनों में कृत्रिमता और अनुचितता आदि आ गई हैं। [illegible] [illegible] अलंकार आदि [illegible] चमत्कार की दृष्टि से इनकी कविता [illegible] [illegible] [illegible] की इन्होंने अपनाया है [illegible] भाव को [illegible] [illegible]

प्रश्न—रीति-ग्रन्थकारों में मुख्य २ का समुचित परिचय दो।

आचार्य केशवदास—आचार्य कोटि के कवियों में आचार्य केशवदास पहिले आते हैं। इनका काल १६१२–१६७४ माना जाता है। ये ओरछा निवासी और ओरछा नरेश इन्द्रजीत के आश्रित थे।

केशवदास संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् थे। अतएव रसिकप्रिया संस्कृत की परिपाटी पर काव्य के उपादानों अलंकार आदि का विवेचन स्वाभाविक गुण थे। संस्कृत के लक्षणकारों में भी वे दण्डी और रुद्र अनुयायी थे और अलंकार को ही काव्य का सर्वस्वभूत आत्मा मानते इनके कवि प्रिया, रसिक-प्रिया आदि अलंकार ग्रन्थ और रामचन्द्रिका काव्य तीन ग्रन्थ मिलते हैं।

आप वस्तुतः आचार्य थे, कवि पीछे थे। आपने रस अलंकार आदि [illegible] सर्वप्रथम वर्णन किया और उनके उदाहरण रूप कविता लिखी। इनके अनुसरण पर ही फिर आगे के आचार्यों ने ग्रन्थ रचना की। कवित्व की दृष्टि से इनकी कविता साधारण कोटि की है। उसमें भावुकता और गहनता और उसकी अनुभूति अत्यन्त है। भावों में अस्वाभाविकता, [illegible] में भद्दापन, उक्तियों में क्लिष्टता और अनुचितता आदि आ गई हैं। हाँ [illegible] वर्णन सौन्दर्य और [illegible] आदि के चमत्कार की दृष्टि से इनकी कविता [illegible] है। [illegible] विभिन्न प्रकार की इन्होंने अपनायी [illegible] काव्य [illegible] प्रबन्ध में ये भाव को अनाथ छोड़ [illegible] हैं। [illegible] रामकथा का आद्योपान्त वर्णन किया है। [illegible] रामकथा के [illegible] प्रसंग को लेकर ग्रन्थ [illegible] रामकथा के [illegible] कारण यद्यपि [illegible] किन्तु इसमें वह [illegible] इसका [illegible] अनेक [illegible] इनका [illegible] हुआ। इनकी कविता में [illegible]

ग्रन्थ, छन्दसार नामक पिंगल-ग्रन्थ तथा मतिराम सतसई नामक एक सौ दोहों का संग्रह ग्रन्थ लिखे।

इनकी कविता में आचार्यत्व और कवित्व दोनों में कवित्व की मात्रा अधिक है। इनकी रसात्मकता और भाव प्रवणता पर्याप्त है, जिसमें अलंकार आदि का समुचित सन्निवेश है। भाषा ब्रज है।

एक उदाहरण—

कुन्दन को रंग फीको लगै झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आलिम में अलसानि चितौनी में मंजु विलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहे मुसकानि—मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरेसी निकाई॥

देव—इनका काल १७३०—१८२७ माना जाता है। ये इटावा रहने वाले और सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये बचपन से कवि थे और सोलह की अवस्था में आजमशाह की प्रशंसा में कविता बनाई थी। किन्तु इन्हें किसी राजा का आश्रय नहीं मिला था और अधिकतर जीवन इनका देश-देशान्तर में घूमने में ही बीता था।

इन्होंने ७२ ग्रन्थ लिखे बताये जाते हैं जो समस्त नहीं मिलते। जो मिलते हैं उनमें काव्य रसायन, रसविलास, सुखसागर आदि लक्षण ग्रन्थ और देवमाया प्रपंच, जातिविलास, प्रेमचन्द्रिका, भावविलास, भवानीविलास, कुशलविलास आदि काव्य ग्रन्थ हैं। इनमें मायाप्रपंच नामक ग्रन्थ नाटक है।

इन आचार्यत्व की दृष्टि से केशव से कुछ ही कम उतरते हैं। परिमाण में आप की कविता सर्वाधिक है ही विषयों और वर्णनों की दृष्टि से भी आप [illegible] विस्तृत हैं। आप शृंगार के प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने नायिका [illegible] किया है, जिसमें विभिन्न देशों की अनेक अवस्थाओं [illegible] वर्णन किया है। आपकी कविता घुमड़ी हुई घुटीली [illegible] आपने शृंगार के अतिरिक्त ज्ञान वैराग्य पर भी लिखा है [illegible] आप भावुक कवि हैं। भाषा आपकी ब्रज है, जिस पर [illegible] भाव रूप विस्तृत होने के कारण इनकी भाषा में

रचनाओं के उन्होंने बिलकुल स्वतंत्र प्रणाली में भी जिसे लिखा संबद्ध छिन्न बातों के भाव से रचित है। इसी प्रकार महाराज छत्रसाल को प्रशंसा में लिखे उनके १० छन्दों का संबद्ध छत्रप्रकाश एक भाव से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उनका और कोई साहित्य नहीं मिलता।

समय-प्रवाह के प्रतिकूल भूषण ने साहित्य में वीरता का प्रचार किया था। उनका स्वभाव-सिद्ध रस यही था। वैसे ही वीर देश-भक्त छत्रसाल और शिवाजी जैसे उन्हें अपने वर्णन के नायक मिल गये थे। सोने में सुगंध का योग हो गया था। उन्होंने अपने नायकों पर हृदयतल से मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा की है, जिसके कि वे उपयुक्त पात्र थे। उनके वर्णनों में कहीं कहीं उन्होंने अत्युक्ति या अतिशयोक्ति से काम लिया है, पर उसका आधार खुशामद या फरमायश नहीं था, बल्कि वस्तुतः उनके प्रति उनका आन्तरिक स्वाभाविक प्रेम और श्रद्धा ही थी। उन्होंने जो कुछ कहा वह वस्तुतः स्वान्तः प्रेरणा से कहा, इनाम पाने के लालच से नहीं। अधिकांश समकालीन हिन्दू जनता के शिवाजी के प्रति ऐसे ही श्रद्धा और अलौकिकता के भाव थे, जैसे कि भूषण ने अलंकार की रक्षित पुट देकर कहे। शिवाजी और भूषण के भाव और विचार आमूल एक थे। इसी लिए कहा जाता है कि एक ही देश-भक्त वीर आत्मा ने कार्य क्षेत्र में शिवाजी के रूप में, और साहित्य क्षेत्र में भूषण के रूप में अपना विकास पाया था। यह बात असत्य नहीं।

भूषण के वर्णन विशद और सजीव होते हैं। उन्होंने शिवाजी की चढ़ाई, आक्रमण, युद्ध और वीर-कृत्यों से लेकर शत्रुओं के हमलों का भयंकर रूप, बातों का अनुपम वर्णन किया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, अत्युक्ति, अतिशयोक्ति श्लेष, उत्प्रेक्षा, विभावना आदि शब्दालंकारों में यमक, लाट, अनुप्रास, आदि का सुन्दर प्रयोग किया है। छन्द और रस के उपयुक्त कवित्त, सवैया, दोहा, दण्डक आदि का उपयोग किया है।

भूषण की भाषा व्रज है, उसमें बुन्देलखंडी अरबी फारसी संस्कृत आदि के शब्दों का मिश्रण है। उनके बारे में एक मुख्य बात यह कही जाती

इन्होंने काव्य के अपाङ्गों—रस, रीति, अलंकार, दोष रस शक्तियों आदि समस्त विषयों पर विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। छन्द और भाषा के विषय में भी आपने ग्रन्थ रचना की है। इनके निर्णय नामक ग्रन्थ में शृंगार का विवेचन बड़ा अच्छा माना जाता इसके अतिरिक्त इनके छन्द प्रकाश, काव्य-निर्णय, रस सागर, रिंगल, शब्दरत्न रीति काव्याम प्रकाश, अमर प्रकाश आदि ग्रन्थ मिलते हैं।

अपनी कविता में ये अपना नाम 'दास' लिखा करते थे। यही नाम साहित्य में प्रसिद्ध भी है।

भाषा आपकी शुद्ध परिमार्जित संस्कृत-गर्भित साधु भाषा है। उदा-

कवि के निसंक बैठि जानि मुंह मुंडन में,
लोकन को देखि दास आनन्द मगति है।
दौरि दौरि जहां तहां लाज करि डारति है,
अंक लागि कंठ लगिबे को उमगति है॥
चमक झमकवारी ठमक ठमक वारी,
रमक तमक वारी आहिर जगति है।
राम असि रावरे की रन में नरन में,
निलज बनिता सी होरि खेलन लगति है॥

पद्माकर भट्ट—अपने समय के ये सबसे प्रसिद्ध और महायशाली कवि हैं। इन्होंने राजाओं की प्रशस्तियों में और प्रचलित परिपाटी पर लक्षण ग्रन्थ लिखने के साथ २ अन्य स्वतन्त्र विषयों पर भी कविता की है, जिनमें से अधिकांश शृंगार वर्णन अपने काल में आदर्श माना जाता था। इनकी अलंकार गुण रीति आदि की योजना, प्रकृति वर्णन नायिका वर्णन, वर्णन आदि सजीव और गहरी अनुभूति को लिए हुए हैं। वैसा ही भाषा पर भी अधिकार है। पद्माकर जैसे कुशल और समर्थ कलाकार हाथों में पड़ कर, विषयानुरूप या रसानुरूप कोमल कठोर आदि कवि के हृ रूपों को धारण करती हुई भावों के साथ में नाचती, मचलती, अकड़ती झ गरजती हुई चलती है।

ये चरखारी के राजा विक्रमसाहि के आश्रित थे। इनका काल १८८०-१९०० माना जाता है।

उदाहरण—

तड़ने तड़िता चहुँ ओरन ते छिति छाई सभीरन की छहरैं।
मदमाते महा गिरिशृंगन पै गन मंजु मयूरन के कहरैं॥
इनकी करनी बरनी न परै मगहूर गुमानन माँ गहरैं।
घन ये नभ मण्डल में गहरैं घहरैं कहूँ जाय कहूँ ठहरैं॥

प्रश्न—इस परिपाटी (रीति ग्रन्थों की) में हुए अन्य कवियों का संक्षेपतः परिचय दो।

उत्तर—इस काल में लक्षण ग्रन्थों की परिपाटी में कविता करने वाले जो अन्य कवि हुए उनका संक्षिप्त परिचय निम्न लिखित है। विशेष के लिए अन्य ग्रन्थ देखने चाहियें।

कुलपति मिश्र—इनका रचना काल १७२०-१७६०, आगरे वासी ब्राह्मण, निवास स्थान और इनके ग्रन्थ रस-रहस्य, मुक्ति तरंगिणी, नख शिख, संग्रह सार गुण, रस रहस्य आदि हैं। रस-रहस्य सब प्रसिद्ध है। ये उच्चकोटि के विद्वान आचार्य और कुशल समर्थ काव्यकार थे। उदाहरण —

ऐसिय कुंज बनी छवि पुंज रहे अलि गुंजर या सुख मांजै।
नैन बिलास दिये बन माँझ बिलोकन रूप सुधा अति लाजै॥ आदि २।

श्रीपति—इनका समय लगभग १७००, आगरे निवासी ब्राह्मण, निवास स्थान काशी, और ग्रन्थ, काव्य सरोज, कवि कल्पद्रुम, रस सागर, अनुप्रास विनोद, विक्रम विलास, सरोज कलिका, अलंकार गंगा आदि प्रसिद्ध हैं। ये अच्छे विद्वान् आचार्य और प्रवीण कवि माने जाते थे। उदाहरण —

जल भरे झूमैं मानो भूमैं परसत आय,
दमकू दिसान घूमैं दामिनी लए लए।
धूरिधार धूमर से धूम से धुवार धार
धुरवान धारे धावैं छवि सों छए छए॥ आदि आदि।

सुखदेव मिश्र—काल १७२० १७८०, [illegible] (बरहो) [illegible]

आदि का ज्ञान था, जिनमें, सभी में इन्होंने पद्य लिखे हैं। इन्होंने कविता अपने समय में प्रसिद्ध और चालू कवित्त-पद्धति के आधार लिखी है, जिससे रस का आस्वादन में कभी का हुलियारा आ गई है।

मोहन के सोहन कीरेवी न ओर रही।
मोहू न रही न चन चले का करद की।
आखर अमल सर सरिता सिमज मज
पंक को न चंक को न डहन गरद को॥ आदि।

प्रश्न—इस काल में दूर सुवक्तव्य कवियों का संक्षेप में परिचय
उत्तर—इस काल में दो तीन सुवक्तव्य कवि हुए हैं जिन्होंने ब्र
में फुटकल कविता और लक्षणग्रन्थ लिखे हैं। उनका परिचय निम्न है।

अज्ञो मुहिब खाँ—इनका काल १७८७, निवास आगरा है। ए
खटमल बाईसी नामक हास्य का काव्य लिखा। उदाहरण—

बाबन पै गयो देखि बदन में रहे छपि
सोवन पै गयो ते पताल ठौर पाई है।
गज्जन पै गयो मुख डारत हैं सोय पर
बैरन पै गयो काहू दारू न बसाई है।
जब हहराय हम हरी के निकट गये
हरि मोसों कहि तेरी मति भूल गाई है॥
कोऊ न उपाय भटकत अति डोलै, सुन
खाट के नगर खटमल की दुहाई है॥

रसलीन—इनका काल १७४४, और नाम सैयद गुलाम नबी,
इन्होंने अंगदर्पण और रस प्रबोध नामक दो रीति ग्र थ लिखे। ये काव्य
कलापक्ष में अधिक विश्वास करते थे—भाषा के ऊपर अतिशय
अलंकार का अधिक उपयोग किया है। उदाहरण—

तुव पगतल मृदुता लिख कै बानी सकुचाई।
मन में आवत नाम ना, मति हूत ना जाई॥ आदि

आलम—इनका रचना काल १७५०-१७६० इनके सवैये

गोविन्दपुरा था। इनके एक भाई और बहिन थी। इनकी माता की मृत्यु
अचानक इनके पिता इन्हें १२ वर्ष की ही अवस्था में छोड़ कर ओरछा गाँव
ससुराल में चले गये वहां बिहारी का आचार्य केशव और रसिक
प्रवीणराय से आप पहिचान हुई। ओरछा के समीप ही तुरो गाँव में
महात्मा सरहरि रहते थे। इनके पिता ने इन्हें सरहरि दास और केशवदास के
पास पढ़ने लगा दिया। इनका नाम बिहारीलाल सरहरि की ने रखा था
इनका विवाह मथुरा की एक चौबे पुत्री से हुआ था। बिहारी आप में
बहुत रसिक और भावुक थे। इस पर इन्हें केशव और प्रवीणराय से
अत्यन्त रसिक कलाकारों का संग मिल गया था जिससे इनके रस स्वरूप
और भी वृद्धि हुई। इसी भावुकता के कारण ये अपनी ही पत्नी पर आसक्त
अपनी ससुराल मथुरा में ही रहने लगे थे। एक बार ये महाकवि सेनापति को देख
बादशाह शाहजहां से भी मिले, जो इन्हें अपने साथ आगरे ले आया था
इन्होंने वहां रहते हुए फारसी का अध्ययन किया। वहां से ये आमेर के
वहां महाराजा जयसिंह अपनी नवविवाहिता नवयौवना रानी के प्रेम
पाश में मस्त हो राज काज भूले हुए थे। बिहारी ने उन्हें यह दोहा लिख
भेजा कि.—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अलि कलि ही सों बिंध्यो आगे कवन हवाल॥

महाराजा पर यह निशाना इतना फिट बैठा कि वे रंग महल से
निकल आये और राज काज करने लगे। तब से इनकी कविता पर वे
मुग्ध हुए कि उन्होंने इन्हें अपने पास ही रखा। कहते हैं इनके एक
दोहे पर उन्होंने एक एक मोहर इनाम में दी थी और उनकी रानी ने इन्हें
छोटा काली पहाड़ा नाम के स्थान दिया था। ये महाराजा जयसिंह के
सरहद के युद्ध में भी साथ थे, जिसका वर्णन इन्होंने किया है। अपनी मृ
से पूर्व ये ओरछा [illegible] रहे। फिर
इस समय का [illegible]

बिहारी का [illegible] ग्रन्थ [illegible] नामक सप्त, प्राप्य
[illegible] है। बिहारी [illegible]

बिहारी ने अपने दोहों में नायक, नायिका, उनके नख शिख, भेद, विभिन्न स्वरूप और दशाएं, ऋतु और ऐसे ही शृंगार सहयोगी विषयों पर बड़ी सूक्ष्म, चुभती हुई, रसमयी उक्तियां कही है और इन दोहों में दो ही दस बीस तीस ही उच्च कोटि के नहीं हैं प्रत्युत सब के सब एक से एक बढ़ कर हैं। स्व० आचार्य पद्मसिंह ने सतसई के बारे में कहा था कि "इस ओर से चाहे जिधर से भी तोड़िये उत्तरोत्तर मिठास मिलेगी।" बिहारी पर संस्कृत, हिन्दी और फारसी के साहित्य का प्रभाव पड़ा था, इसका प्रमाण उनकी अपनाई काव्य शैलियों या वर्णन की रीतियों से मिलता है। उनकी सूक्ष्मता, बारीक बीनी और अतिशयोक्ति पर स्पष्ट ही फारसी का प्रभाव पड़ा। काव्य के इसी प्रभाव में आकर उन्होंने एक दो दोहों में शृंगार में विभि[illegible] बीभत्स वर्णन भी कर दिया। उत्प्रेक्षा, उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरो[illegible] असंगति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि मुख्य २ अलंकारों का उनका प्रयोग बहु[illegible] है। सारांश में बिहारी की कविता अपने विकास की चरम सीमा को पहुं[illegible] हुई है जो अपनी उपमा नहीं रखती।

इसके इन्हीं गुणों के कारण आज तक बिहारी सतसई पर जितने कवियों ने जितने भाष्य टीका टिप्पणी आदि किये उतने किसी काव्य पर नहीं।

उदाहरण —

बत रस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहनि हंसै, दैन कहै नटि जाय॥

गुरु गोविन्दसिंह—इनका समय १७२३-१७६४ है। इनकी प्रसिद्धि वस्तुतः इतनी कवि के रूप में नहीं है जितनी कि एक पंथ के धार्मिक गुरु, राजनैतिक नेता और सेनापति के रूप में। ये सिक्खों के दसवें [illegible] और इनकी वाणी श्री गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत है। इन्होंने ज्ञान, वैराग्य, भक्ति [illegible] निर्गुण की उपासना [illegible] को अपना[illegible] [illegible] वाणी हिन्दी [illegible]

वस्तु-स्थिति का प्रवाहमय वर्णन करने में ये विशेष दक्ष थे। उदाहरण—

अभिमनु धाइ लइग पहारे संमुख जैहि धायो तेहि मारो॥ आदि

युन्द—इनकी नीति के सात सौ दोहों वाली युन्द—सतसई प्रसिद्ध है। ये मेड़ते के रहने वाले और हरखगढ़ के महाराज राजसिंह के गुरु थे। इनका काल १७६१ है।

महाराज विश्वनाथसिंह—ये रीवां के महाराज थे, जो १७८८ से १८१७ के काल में वर्तमान थे। ये बड़े विद्या प्रेमी और गुणी जनों का सत्कार करने वाले थे। इनके रचे ३२ ग्रन्थ बताये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने ब्रज भाषा में सर्व प्रथम आनन्द रघुनन्दन नाम का नाटक भी लिखा था। ये वस्तुतः भक्त कवि थे।

जोधराज—इन्होंने रणथम्भौर के हम्मीरदेव के चरित और अलाउद्दीन के साथ हुए युद्धों का हम्मीर रासो नामक ग्रन्थ में बड़ी ओजस्वी भाषा में वर्णन किया है। इतिहास की घटनाओं को यद्यपि इन्होंने ज्यों का त्यों ही रखा है, तो भी प्रसंगवश अवान्तर कथाओं की कल्पना कर ली है। इनका काल १७८० माना जाता है। उदाहरण—

जीवन भर न संजोग जग कौन मिटावै ताहि।
जो जनमै संसार में अमर रहै नहीं आहि॥

गिरधर कविराय—ये १७७० में वर्तमान थे। इनकी लिखी कुण्डलियाँ गाँवों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इनका और अधिक पता नहीं।

हमराज बन्दीजन—इनका काल १७६६ था और ये पन्ना नरेश अमानसिंह के दरबारी कवि थे। ये सखी सम्प्रदाय में दीक्षित थे, अतएव इनकी कविता में प्रेम का आदर्श भी है। इनकी रचना परिमार्जित कोमल कान्त सुगठित वाणी भाव और रसमय है। उदाहरण—

पर मुकरवार चरवाह गाय हमारी लीजो।
गाय न कहूँ तुरन को यातो सौंपि सुरप के दीजो॥ आदि

बेताल—इन्होंने विक्रमादित्य का सम्बोधन करके कुण्डलियाँ लिखी हैं। ये जाति के बन्दी जन थे और १७३४ में जन्मे थे।

पर समान अधिकार था। उदाहरण—

चल चकई तेहि सर विषे जहँ नहि रैनि विछोह।
रहत एक रस दिवस ही सुहृद हंस सन्दोह॥

चन्द्रशेखर—काल १८२२—१८३२, स्थान जिला फतहपुर मुकामबाद और जाति बाजपेयी ब्राह्मण थे। ये अन्तिम दिनों में पटियाला नरेश नरेन्द्रसिंह के आश्रित रहे जिनके कहने पर इन्होंने हम्मीर हठ नामक वीर काव्य की बड़ी ओजस्विनी भाषा में रचना की। अन्यग्रन्थ विवेकविलास, रसिक विनोद, हरि भक्ति विलास नखसिख आदि लिखे। इनका वीर वर्णन संयत और औचित्य पूर्ण है, भाषा भी अस्वाभाविक नहीं हो पाई है। अतएव इनका वीर और शृंगार आदि का वर्णन सरस है। उदाहरण—

थोरी थोरी बेसवारी नवल किसोरी सबै।
भोरी भोरी बातन बिहसि मुह मोरति॥आदि।

ठाकुर—काल १८२३—१८८०, जाति कायस्थ, स्थान ओरछा और आश्रयदाता जैतपुर नरेश थे। ये बुन्देल खण्डी ठाकुर थे। इन्होंने प्रेम और होली आदि त्यौहारों पर बड़ी सुभती हुई सरस भावपूर्ण मधुर कवितायें की हैं। इनकी कविताओं का संग्रह स्व०दीन जी ने ठाकुर-ठसक नाम से प्रकाशित किया था। उदाहरण—

अपने अपने सुठि गेहन में चहे दोउ सनेह की नाव दै री।
अंगनान में सीमत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि आव दै री॥ आदि

पजनेश—रचना काल १८००, स्थान पन्नानगर था, ये फारसी के पण्डित थे। इनकी ब्रजभाषा की मुक्तक कविताओं का संग्रह पजनेस प्रकाश का नाम प्रसिद्ध है। इन्होंने कवित्त सवैये लिखे हैं। शृंगार वर्णन में भी रस विरोधी वर्ण वर्ग का इन्होंने त्याग नहीं किया। उदाहरण—

पजनेस समदुकला बिमलिस तुरये कुरबत व कदन कम।
मदपूर चुवो बदमस्त सनम अजरस्त अखावत तुरत बम॥ आदि

शिवदेव—अयोध्या के महाराज मानसिंह का नाम शिव देव था। इन्होंने अब में शृंगार चंद्रोदय और शृंगार लतिका नामक दो काव्य लिखे। आपका वर्ण्य वर्णन विशिष्ट भावना आधार है। भाषा परिमार्जित कोमल

के परतंत्र होने से उनमें प्रतिभा का वह स्वतंत्र चमत्कार नहीं, जो लल्लू तथा उनकी स्वतंत्र रचनाओं में होता। तो भी इसके कारण हिन्दी में एक नवीन और आवश्यक विषय का सांगोपांग वर्णन हुआ और उसकी सृष्टि हुई।

कवित्व की दृष्टि से लक्षण ग्रन्थों की रीति से स्वतंत्र काव्य रचना करने वालों को ज्यादा स्वतंत्रता रही। उन्होंने विभिन्न विषयों पर, विभिन्न रसों में मार्मिक, चुभती हुई रसमयी रचनाएं कीं, जो किसी भी साहित्य के लिए गर्व की वस्तु हैं। शृंगार और प्रेम का इस काल का हिन्दी का साहित्य संसार के किसी भी बड़े से बड़े साहित्य से टक्कर ले सकता है। वस्तुतः इन दोनों ही प्रकार के आचार्यों का हिन्दी के साहित्य में अग्र स्थान है, और उनका साहित्य हिन्दी की अमूल्य निधि है।

आधुनिक काल १९००

प्रश्न—संक्षेप में इस काल की राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक दशा पर दृष्टिपात करिये।

उत्तर—यह काल वस्तुतः सदियों की विलासितापूर्ण तंद्रा के पश्चात् जागरण का काल है भारत में—अखिलमुख। मुगल शासन की दो बड़ी विशेषतायें थीं। उन्होंने जहां अमंगल प्रकार से अत्याचार किये, वहां यह भी किया कि सदैव जरा जरा सी बातों पर संघर्ष करते हुए अनेक छोटे छोटे रजवाड़ों को, शक्ति से आधीन कर, समग्र देश को एक शासन-सूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया और व्यवस्था द्वारा शान्ति उत्पन्न करने की चेष्टा की। इतिहास साक्षी है अपने इन दो कार्यों में वे बहुत हद तक सफल रहे। अकबर से लेकर औरंगजेब के पूर्वार्द्ध तक सारा देश एक शासन-सूत्र में बंधा रहा और अनेक छोटी छोटी रजवाड़ियों के पारस्परिक संघर्ष बहुत कुछ बन्द हो गये। इस काल में शासन और व्यवस्था के एक अंश में और बहुत संघर्ष या लड़ाइयां हुईं, जो दिल्ली के शासकों द्वारा दक्षिण के ओर प्रयत्न अवश्य होने से अन्यथा या यह काल शान्ति का रहा है। औरंगजेब का समय मुगल साम्राज्य के उत्थान का काल है और उसके शासनकाल तक जाकर उसको

परम्पराओं का विद्रोह होता है, धर्म में प्राचीन सिद्धान्तों के, विचारों और आचारों के प्रति विद्रोह होता है और राजनीति में वर्तमान अंग्रेज़ी सत्ता [illegible] विद्रोह होता है। ऐसे लगता है जैसे सदियों से अनेक बन्धनों से बँधी हुई भारतीय आत्मा उन सब को तोड़ फोड़ कर स्वतंत्र होने को छटपटाती है। इन बन्धनों में धर्म के बन्धन भी आ गये और समाज और राजनीति के भी।

साहित्य और भाषा में भी यही प्रवृत्ति कार्य रही है। उसमें पुरानी भाषा के प्रति, पुराने काव्य के नियमों और कविता पद्धतियों के प्रति विद्रोह सा है। इन सबसे स्वतन्त्र हो साहित्यकार नवीन स्वतन्त्र रूप में चलना चाहता है। उसे पुरानी उपमाओं से, पुराने रूपकों से और पुराने कवि-समय-सिद्ध वर्णनों से चिढ़ सी है। उसे पुराने काव्य के आदर्श थोथे लगते हैं। [illegible] पुरानी रचना परिपाटी का आदर नहीं करता। उसे अब पुरानी भक्ति [illegible] नीति धर्म आदि की रचनायें अच्छी नहीं लगतीं। वह अब प्राचीन कवियों [illegible] समान बड़े २ विशिष्ट आदमियों की बात न कह, साधारण जन की [illegible] करता है। [illegible] और [illegible] की न कह, इस जगत की कहता है। [illegible] में [illegible] उड़ान [illegible] और [illegible] का ग्रहण करता है। नये भाव, [illegible] भाषा, नये [illegible], नई [illegible] नवीन कल्पना और नवीन और [illegible] [illegible] [illegible] काव्य की [illegible] यही विशेष[illegible] है। [illegible] इस [illegible] की यह है कि इस समय [illegible] [illegible] [illegible] संस्कार [illegible] [illegible] भाषा का [illegible] जाता है, जिसमें काव्य [illegible] [illegible] [illegible] इस काल में [illegible] [illegible] नहीं था, [illegible] इस [illegible] भी [illegible] [illegible] इस [illegible] [illegible] काव्य रचना की [illegible] इस काल के [illegible] इस [illegible] [illegible]

मौत्तर प्रदेश ही रहा। अतएव इसी प्रदेश [आगरा, मेरठ, दिल्ली] की भाषा भी प्रमुख हुई। कारण, राजधानी होने के नाते यहाँ दूर दूर से व्यापारी, सौदागर, सेठ साहूकार आते थे और जाते हुए यहाँ की बोली भी ले जाते थे, इसके अतिरिक्त मुगल सेनाएं और चकमर भी देश के अन्य भागों में जाते हुए यही बोली ले जाते थे, जिससे इसका प्रचार बढ़ रहा था। किन्तु साहित्य रचना गद्य में आधुनिक काल में ही प्रारंभ हुई। यूं नाममात्र के लिए हिन्दी गद्य प्राचीन काल में भी लिखित प्रयोग में आई ही थी, पर उसका लिखित साहित्य इस काल का अध्ययन है।

गद्य का लिखित रूप हमें प्रारंभ से दो रूपों में प्राप्त होता है, एक ऐसा जिसमें ब्रजभाषा की प्रमुखता है और दूसरा ऐसा जिसमें ब्रजभाषा तद्भव शब्दों की और फारसी के शब्दों का सम्मिश्रण है। पहले में शृंगार शतक की टीका, गोरख पंथियों का साहित्य, विट्ठल नाथ के मुखपत्र, गोकुल नाथ की चौरासी वैष्णवों की वार्ताएं, नेग, चार आदि की गद्य कथाएं आदि मिलती हैं और दूसरी फारसी लिपि में भारती रूप में कबीर, लुतरी इंशाअल्ला खां आदि ने लिखा। मुसलमानों को अपने धर्म के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी गद्य के निर्माण या प्रचार के लिए प्रयत्न किया, अपने लिए उन्होंने विशेष रूप से उन्होंने अपने साहित्यिक बारी नामक फारसी हिन्दी कोश की भूमिका में किया है। पर वस्तुतः तो हिन्दी गद्य का उचित प्रारंभ १९ वीं सदी में मुंशी सदासुख के सुख सागर में ही होता है। इसके बाद में फिर इंशाअल्ला खां जफर आदि सदस्य लिख हुए। इनमें क्रिश्चियन मिशनरियों कार्यालय के लिखित लिखवाकर के कथन पर कोर्स के लिये पुस्तकें लिखी थीं। इसके पश्चात् तो हिन्दी गद्य के उत्थान के लिए, कई लोगों, राजकीय प्रयास लिखारे शिव राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ने विशेष प्रयत्न किये। किन्तु प्रारंभिक काल में ही, जफर आदि के समय हिन्दी के दो रूप चल रहे थे एक जफर आदि की [illegible]

काल है, जो भारतेन्दु से प्रथम तक है। यह जन्म काल माना जाता है, क्यों कि हिन्दी गद्य का रूपनिर्माण होकर यह समर्थ आता है। इस समय गद्य-लेखन का केवल चलन मात्र होता है, इसमें साहित्य कोई विशेष लिखा जाता।

दूसरा युग भारतेन्दु का है, जो खड़ी बोली का शैशव-काल माना जाता है, जिसमें विविध विषयों में रचना कर उसके स्वरूप और साहित्य का पालन परिवर्द्धन और परिपोषण होता है। इसी काल में खड़ी बोली में पद्य रचना का भी श्री गणेश हो जाता है और पर्याप्त पद्य साहित्य लिखा जाता है। यह काल द्विवेदी जी के काल तक चलता है। इस काल में हिन्दी का क्षेत्र-विस्तार, विषय-विस्तार आदि होकर वह अपने यौवन में पदार्पण करती है। यह यौवन काल उसका द्विवेदी युग होता है।

द्विवेदी काल में खड़ी बोली की काट छांट, उसके व्याकरण और रूप की व्यवस्था होती है। द्विवेदीजी सरस्वती पत्रिका चलाते हैं और उसमें लेखकों की भाषाओं की आलोचना प्रत्यालोचना कर उसके व्याकरण आदि और कविता आदि के नियमों की व्यवस्था पर बल देते हैं। इसी काल में हिन्दी में अंगरेजी बंगला मराठी गुजराती आदि से अनुवाद भी खूब होते हैं। अभिप्राय यह है कि अब इस काल में हिन्दी के साहित्य की वृद्धि के साथ उसके रूप में भी व्यवस्था स्थिरता और नियमितता आ जाती है। इस काल में अनेक उच्चकोटि की मौलिक ग्रन्थ रचनाएं भी होती हैं।

चौथा काल नवीन काल या नवीन धाराएं (विकास काल) कहलाता है। यह काल हिन्दी का (खड़ी बोली का) पूर्ण यौवन-काल है, जिसमें उसका अनेक दिशाओं में स्वतन्त्र विकास होता है। काव्य की रहस्यवादी छायावादी, प्रकृतिवादी, वस्तुवादी और प्रगतिवादी आदि काव्य-धाराएं चल पड़ी हैं। इस युग को वस्तुतः रवीन्द्र और गांधी-युग भी कहा जाता है। क्योंकि इस काल के हिन्दी साहित्य पर इन दोनों ही महापुरुषों की स्पष्ट छाप पड़ी है, जिसका प्रमाण छायावाद रहस्यवाद और चर्खा का गान, अछूत और मजदूर आदि के वर्णन के रूप में स्पष्ट मिलता है। आज यह नवीन काल (विकास काल) ही चल रहा है।

और विभेद जितने स्पष्ट रूप से इस काल में नजर आता है उतना आगे आने वाले काल में नहीं जिसमें कि इन सब शैलियों के उचित सम्मिश्रण एक आदर्श रूप की प्रतिष्ठा के प्रयत्न है। अस्तु, इंशाअल्ला खां की के प्रारंभिक काल में एक मुहावरेदार ठेठ खड़ी बोली गद्य लिखने वाले अनुपम होने का स्थान प्राप्त है जिसका महत्व अन्यों से कम नहीं। नमूना —

'इस सिर झुकाने के साथ ही दिन रात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यार को।"

मुंशी सदा सुख लाल "नियाज"—ये भी इसी काल में थे। ये आगरे के कायस्थ और दिल्ली रहने वाले थे। पहिले ये कचहरी के मुख्तारिम थे, अन्त में रिटायर होकर भजन में लग गये। इन्होंने सुख सागर नाम से भागवत का स्वतंत्र हिन्दी अनुवाद किया, जिसका एक नमूना—

"इससे जाना गया कि संस्कारका भी प्रमाण नहीं आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चाण्डाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चाण्डाल होता है।"

कहना नहीं होगा, यह आधुनिक प्रचलित आदर्श साहित्यिक गद्य का प्रारंभिक, पर अच्छा संस्कृत रूप है। मुं० सदा सुख लाल ने सभा समाज में प्रचलित और ईसाई पादरियों के द्वारा गृहीत "भाषा" को ही ग्रहण किया था, पर उसमें संस्कृत तत्सम शब्दों के उचित सम्मिश्रण और व्यवस्थित शैलि द्वारा योजना के कारण ये उसे हमारी आज की गद्य के बहुत नजदीक ले आये हैं। उन्होंने चालू मुहावरों का, कारकों का कहीं भी लाकर बहिष्कार नहीं किया है बल्कि उनसे उचित सहायता ली है [illegible] तत्सम विषय के साथ गद्य लिखने का उत्तम ढंग का गद्य का मौलिक आवश्यकता करी जा सकती है [illegible] शब्दों के व्यवस्था में [illegible] है। इन्हें अपने समय का इस तरह [illegible] कह दें तो अत्युक्ति नहीं हो सकती

लल्लू लाल की भाषा में कवित्व है, संगीत है, ओज है, चित्र-ण भी है, और वर्णन भी है, पर साथ ही अव्यवस्था है, शिथिलता है, प्र नहीं है सामर्थ्य नहीं है, व्यवस्था नहीं है, दृढ़ता नहीं है (इस और कारण की) रूखेपन और गंभीरता नहीं है—जो कि गद्य के उत्तम होने हैं।

सदलमिश्र—ये भी उपर्युक्त तीनों लेखकों के समकालीन और गिल्ल जी के साथी कोर्ट विलियम कालिज के प्रोफेसर थे। इन्होंने भी लल्लू ला जी के समान ही गिलक्राइस्ट साहब के आदेशानुसार गद्य पुस्त के आधार पर नासिकेतोपाख्यान लिखा, जिसकी भाषा आपके ही, 'नए ए 1८२० में नासिकेतोपाख्यान' को कि जिसमें खड़ीबोली की कथा है, ऐसी भाषा से कोई कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ी बोली में किया है। इस कथन के अनुसार खड़ी बोली है।

इनकी भाषा लल्लू लाल से अधिक परिमार्जित और आज की खड़ी बोली के अधिक निकट है। इन की वाक्य योजना और भाषा प्रवाहमयी है उतनी प्रभावित नहीं। न ब्रज भाषा के शब्दों की उतनी भरमार है। मुंशी सदासुख लाल की अपेक्षा संस्कृत का इन्होंने कम प्रयोग किया और उसकी पूर्ण तत्सम शब्दों से कर ने की चेष्टा की है। मुहावरों, कहावतों, वाक् प्रयोगों का प्रयोग किया है। भाषा में गठन और चलताऊपन भी है। इनकी भाषा आज की खड़ी बोली गद्य का एक प्रारंभिक रूप है, पर वह इतना दृढ़ और संस्कृत नहीं जितना मुंशी सदासुख लाल की गद्य का, जो कि आज की [illegible] भाषा की तुलना में आ सकती है। [illegible] आज है जो प्रेम सागर की भाषा में [illegible] गद्य या खड़ी बोली गद्य का एक [illegible] प्राय रूप उपस्थित किया, [illegible] में स्थान बनाती है।

[illegible] एक साथ गद्य प्रबंधों की शैलियों [illegible] विचारणा करो।

का आविष्कार सा है। उनका प्रयोग है भी तो उनको बिगाड़ कर उनका तद्भव रूप बना कर।

सारांशतः इन सब में मुंशी सदासुख लाल को छोड़ कर अन्य किसी की भी शैलि आधुनिक खड़ी बोली के गद्य का पूर्णतया आदर्श नहीं बन सकती। उन सब में कुछ न कुछ अव्यवहारिकता है। फलतः मुंशी सदासुख लाल का इन चारों गद्य प्रवर्तकों में प्रमुख स्थान है।

प्रश्न—राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मण सिंह का परिचय दे कर दोनों की शैलियों का अन्तर स्पष्ट करिये।

उत्तर—इन दोनों लेखकों से वस्तुतः बीसवीं सदी का साहित्य आरंभ होता है। ये दोनों महानुभाव और इनके साथ कुछ एक अन्य छोटे मोटे लेखक वस्तुतः लल्लू लाल आदि के और भारतेन्दु के युगों के बीच की कड़ी हैं। इनमें से प्रथम सितारे हिन्द का नाम आता है।

राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द—ये १८८०—१८९६ तक के काल में थे। इन्होंने प्रथम बनारस से, बनारस अखबार निकाला और बाद में वे शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर हो गये, तो इन्होंने छोटी मोटी स्कूल की पाठ्य पुस्तकें लिखीं। इनकी भाषा शुद्ध [illegible] संस्कृत गर्भित [illegible] का सरल मिश्र के सदृश थी [illegible] इनका मन बदल गया और ये [illegible] ऐसी भाषा के पक्ष [illegible] [illegible] कारसी के [illegible] शब्दों [illegible] [illegible] भाषा के [illegible] और ऐसी इन्होंने [illegible] इन्होंने ऐसा कि इन्होंने [illegible] दोनों का एक ऐसा ही [illegible] [illegible] अब आप अपना [illegible] [illegible] राजा का [illegible] [illegible] हिन्दुस्तानी के [illegible] [illegible] समय के [illegible] [illegible] [illegible] इनकी भाषा [illegible] [illegible] हो और बताया। इनकी [illegible] [illegible] इन शब्दों को

हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहां के मुसलमान और फारसी पढ़े लिखों की बोल-चाल है। हिन्दी में संस्कृत के शब्द अधिक आते है और उर्दू में अरबी फारसी के।"।

इस प्रकार इस समय में ये दो प्रधान शैलियां चल पड़ी थी और अनेक दिशाओं में हिन्दी के लिए बड़े २ आदमी प्रयत्न कर रहे थे। पंजाब में इसी काल में नवीन चन्द्रराय नामक बंगाली सज्जन और श्रीराम किलोरी नामक आर्य समाज प्रचारक भी हिन्दी प्रचार का कार्य कर रहे थे। पर हिन्दी को विशेष उत्तेजना इससे आगे भारतेन्दु युग में ही मिलती है, जब कि हिन्दी साहित्य बहुमुखी हो अनेक धाराओं में प्रवाहित होता है।

प्रश्न--हिन्दी प्रचार में ईसाई पादरियों का क्या हाथ रहा?

उत्तर--अंग्रेज वणिकों और शासकों के साथ कुछ ईसाई धर्म प्रचारक भी इनके साथ यहां आये थे। उन्हें धर्म प्रचार के लिए राज्य से सहायता भी मिलती थी। उनके लिए क्षेत्र भी यहां खूब फलदार था। यहां की अधिकांश जनता अत्यन्त पिछड़ी हुई, गरीब, अमीरों और अफसर लोगों के द्वारा से दलित और निरक्षर थी। अछूत थे, जो हिन्दुओं के सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित थे। और फिर समस्त भारतीय समाज की अवस्था डावांडोल थी। फलतः वे बड़ी आसानी से धर्म परिवर्तन द्वारा इस अभ्युष्ट लोगों को अपने धर्म में मिला सकते थे। उन्होंने कार्य प्रारंभ किया, स्थान स्थान पर, देश में [illegible] और अन्य प्रचार का संस्थान, शिक्षा केन्द्र आदि स्थापित हुए। उनके सामने एक बड़ा प्रश्न था भाषा का कौनसी भाषा में प्रचार करें इन्होंने सब साथ विचार कर पहले तो धार्मिक जनता की परिचित भाषा या भाषा अपनाई और इसमें अपना प्रचार-साहित्य खूब तैयार किया। इनका साहित्य दो प्रकार का होता था, एक से अपने धर्म [illegible] के लिए तथा और इसरे साधारण के यानी अपने धर्म की बातें और अपने [illegible] पर भाषा की दृष्टि से [illegible] पर हिन्दी के प्रचार का [illegible] के अनुसार परिष्कार करने

इतविच सी। प्रतीत होते हैं। गद्य में दुनियां भर के विषय लिखने के प्रयत्न किये गए—उनमें, काव्य, नाटक, कृषि, कला, मनोविज्ञान, अर्थ शास्त्र, राजनीति, इतिहास, विज्ञान आदि सब हैं। भारतेन्दु जैसे विशिष्ट व्यक्तियों ने मौलिक भी लिखा और अन्य बंगला, संस्कृत आदि से अनुवाद भी किया। अधिकांशों ने अनुवाद ही किए। अनेक समाचार पत्र निकले—इनमें समाचारों के साथ छोटे मोटे विभिन्न विषयों पर निबन्ध भी होते थे, जो इतने सुन्दर होते थे कि, विद्वानों की राय है, उतने बाद के समय में भी नहीं लिखे गये। इस समय बंगला और अंगरेज़ी के ढंग पर गज़लें लिखी गईं, उपन्यासों की तो परम्परा ही चल पड़ी। अन्य भाषाओं से भी इनके अनुवाद हुए। गद्य का रूप निखर कर वह अब सभी विषयों के लिखने में समर्थ होती जा रही थी। किन्तु कविता इस काल में भी प्रधानतया ब्रजभाषा में ही हुई। कारण खड़ी बोली में उस समय इतनी स्वच्छता सामर्थ्य नहीं आई थी कि वह कविता के क्षेत्र में भी उतनी सफलता से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सफल हो सके—उसको छंद के ढांचे में बिठाना बड़ा कठिन था। पर फिर भी खड़ी बोली में पद्य रचना प्रारम्भ हो गई थी। कवि लोग संस्कृत छन्दों में संस्कृत के व्याकरण के आधार पर समासों से काम लेकर हिन्दी गद्य को फिट बैठा देते थे। इस प्रकार गद्य और पद्य की भाषा एक करने के लिए प्रयत्न हो रहे थे। सारांश, भारतेन्दु के समय की साहित्यिक प्रगति को हम निम्न शीर्षकों में बाँट सकते हैं,—

१—विचार-वहन खड़ी बोली के रूप को अनेक शैलियों की दलदल में से निकाल कर, उन शैलियों के निष्कर्षभूत आदर्श रूप में उसकी प्रतिष्ठा हुई। हिन्दी गद्य का एक साहित्यिक रूप स्थिर हुआ।

२—विषयानुकूल अनेक शैलियां निर्माण का प्रयास और विचार अर्थात् गम्भीर विषय के लिए गम्भीर संस्कृत गर्भित और सहज साधारण विषय के लिए व्यावहारिक बोलचाल की सरल शैली का प्रयोग करना आदि।

३—साहित्य के विभिन्न अंगों का [illegible] उपन्यास लिखे गये, कहानियां लिखी गईं [illegible] सामाजिक [illegible] निबन्ध [illegible] वैज्ञानिक [illegible] मौलिक [illegible] अनुवाद [illegible]

में गुजारे। इनका स्वास्थ्य भी खराब हो गया और अन्त में ३२ साल की ही आयु में आप का देहान्त हो गया।

इतने अल्पकाल में ही आपने हिन्दी की जो सेवा की वह अनुपम है। इन्होंने स्वयं साहित्य लिखा और औरों को प्रेरणा देकर लिखवाया। आ के आदर्श रूप की स्थापना की। हिन्दी साहित्य की वृद्धि के लिए सिर प्रयत्न किया। ये वस्तुतः युगपुरुष थे। अपने समय की प्रधान चालक श थे। इन्होंने बनारस से दैनिक, कवि वचन सुधा मासिक, हरिश्च मैगजीन, बाला बोधिनी पत्रिका निकाली। अनुवादों में सर्व प्रथम बंगला से विद्या सुन्दर नामक नाटक का अनुवाद किया। इसके पश्चात् आपने संस्कृ नाटकों का भी अनुवाद किया। स्वतन्त्र रचनाएं की। विविध विषयों पर लिखा। लेख, कविता, कहानी, नाटक सभी कुछ लिखे। नाटकों में इन्होंने पद्यानुवाद तो ब्रज में किया है पर अन्य सब खड़ी बोली गद्य में। खड़ी बोली में भी इन्होंने पद्य रचना की है।

इनकी भाषा आदर्श रूप थी, जिसमें संस्कृत प्रधान थी, पर फारसी का भी उचित समिश्रण था। मंजी हुई, परिष्कृत, साहित्यिक, व्यंग्य पूर्ण तेजो भाषा आप सामान्यतः लिखते थे। पर विषय के अनुसार ये अपनी शैली बदल देते थे। कटु आलोचनाओं के लिए आप तीखी फारसी-मिश्रित चुल्ल बरेदार भाषा लेते थे, वर्णनात्मक या अन्य ऐसे ही सुबोध विषय के लिए सरल सीधी प्रसाद-पूर्ण लिखते थे और गंभीर दार्शनिक विषयों पर आप परिष्कृत संस्कृतमय गंभीर भाषा में लिखते थे। आपको सभी शैलियों पर पूर्ण अधिकार था।

आप आचार्य थे, कवि थे, नाटककार थे, कहानीकार थे, सम्पादक थे, गद्य निर्माता थे और अपने संग्रह के सब से बड़ साहित्यिक सुधारक और नेता थे। इसने हिन्दी की भावना-आकांक्षा की प्रथम पुकार, संपन्न साम्राज्य और जिसका हमारे प्रति अपरिमित हिन्दी साहित्य में प्रथम हमारी की कहा थे आप हैं आप ने आलोचना के स्वतन्त्र थे और ने नवीनता के विरोधी इन हमारी का समन्वय अपनी रचनाओं में लिखता है। आपने आलोचना और नवीनता का

भट्ट की कैसा विनोदीपन नहीं है । भाषा संस्कृत गर्भित, [illegible] और संयत है ।

अम्बिकादत्त व्यास—ये संस्कृत के अद्वितीय पण्डित थे । इन्होंने [illegible] राज शिवप्रसाद नाम संस्कृत में शिवाजी का चरित-रूप आधुनिक ढंग [illegible] इतिहास लिखा है । ये आशुकवि थे और बचपन से ही सुन्दर कविता [illegible] थे । हिन्दी पर भी आपको पूरा अधिकार था । ये संस्कृत गर्भित, [illegible] वाली, छोटे २ वाक्य वाली संयत और विशद भाषा लिखते थे । हिन्दी [illegible] इन्होंने पहिले पीयूष प्रवाह नामक समाचार पत्र निकाला । ललिता नाटक [illegible] नामक नाटक लिखे । गद्य मीमांसा नामक भाषा पर एक विवेचनात्मक ग्रन्थ [illegible] लिखा । अवतार मीमांसा, मूर्तिपूजा आदि सनातन धर्म के ग्रन्थ लिखे ।

विषय के अनुरूप आप भी भाषा बदलते थे । आलोचना और तर्क [illegible] और गंभीर विवेचन की ओर । साधारण बोली में आप फारसी शब्दों को [illegible] लिखों और मुहावरों से सहायता लेते थे । अलंकारों का विधान करते [illegible] उदाहरण, "जिस लड़के को कुर्ते में खुजली तक लगाना नहीं आता [illegible] खाने से या हाथ धोना तक नहीं आता, उस लड़के के विरुद्ध [illegible] क्षेत्र के ऐसे कोमल हृदय में यूरोप और अमेरिका की सेनी की आती है ।"

बालमुकुन्द गुप्त ये भारतेन्दु के मित्र और हास्य के अनुपम [illegible] थे । इनके लिखे संतु के चिट्ठे प्रसिद्ध हास्य के ग्रन्थ हैं । इनकी [illegible] चटकदार, व्यंग्य पूर्ण, चुभती हुई मुहावरेदार होती थी । इन्होंने [illegible] और आनन्द मिश्र नामक दो पत्र भी निकाले थे ।

प्रताप—भारतेन्दु के चलाये हुए या दूसरी बार के गद्य के विषय [illegible] एक पत्रिका और लिखा ।

[illegible]

भिन्न २ लेखकों की भिन्न २ विशेषताओं के लिये शैलियों का विकास हो रहा था।

स्पष्ट ही इस सारी प्रगति के प्रधान संचालक द्विवेदी जी ही थे। इस युग की मुख्य प्रेरणा ये ही थे। इस काल के साहित्य का और उसमें उस काल में वर्तमान प्रवृत्तियों का वर्णन वस्तुतः द्विवेदी जी या उनकी पत्रिका सरस्वती के इतिहास का वर्णन है। उनका हिन्दी साहित्य और गद्य पर उस समय ऐसा ही सर्वव्यापी प्रभाव पड़ा था।

उनका युग गद्य का यौवन काल है, जब वह सर्वांग परिपुष्ट हो, खिले हुए परिमार्जित अभिनव मधुर रूप में उपस्थित होती है और उसका अपने पूर्ण सौन्दर्य को प्राप्त होने के पश्चात आगे चलकर अनेक भङ्गियों-शैलियों में विकास होता है।

प्रश्न—भारतेन्दु के पश्चात् के कुछ-एक प्रधान लेखकों का संक्षिप्त परिचय दो।

आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी—जन्म काल १८६१। ये अपने समय के साहित्यिक युग पुरुष थे। इन्होंने इलाहाबाद से सरस्वती मासिक पत्रिका निकाल कर हिन्दी के प्रचार और उत्थान का प्रयत्न प्रारम्भ किया था और आजन्म उसे घाटे में भी चला कर निभाते रहे। द्विवेदी जी और उनकी पत्रिका का इतिहास वस्तुतः अपने काल का साहित्यिक इतिहास है। ये अपने काल की संचालक शक्ति थे। इनके प्रयत्न हिन्दी में—भाषा में और साहित्य में भी—विधान व्यवस्था की ओर रहे। इन्होंने छोटे २ व्याकरण विषयक लेख लिखे, अनेकों की भाषा में दोष निकाले, आलोचना की और लेखकों का शुद्ध परिमार्जित और व्याकरण-सिद्ध भाषा लिखने की ओर ध्यान आकृष्ट किया। साथ ही भाषा में कोमा पाई आदि विराम चिन्हों के प्रयोग की व्यवस्था की। इस रूप में ये हिन्दी गद्य के सर्व प्रमुख विधान निर्माता व्यवस्थापक ठहरते हैं।

ये कवि भी थे। इन्होंने ब्रज और खड़ी बोली में कविता लिखी। एक कुशल और आकर्षक निबन्ध-लेखक भी थे। इन्होंने आलू के घाटे भाट—विज्ञान से लेकर, भाषा साहित्य धर्म विषयों तक पर सुन्दर निबन्ध लिखे।

बदल जाती है। इनके उपन्यासों में भिन्न भिन्न प्रसंगों पर पात्र के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। कथोपकथन में, व्याख्यान में इन्होंने पात्रानुरूप ही भाषा शैली बदल दी है, जिससे पात्रों की भाषा-गत विशेषता स्पष्ट रहती है। आम तौर पर इनकी शैली संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी और तद्भव शब्दों से युक्त भाषा में सरल, सुबोध और व्यंजना-पूर्ण होती थी। आप अपने समय के सर्वोत्कृष्ट उपन्यास और कहानी के लेखक थे।

पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक——जन्म सं० १९४८ स्थान पंजाब। ये बहुत प्रारम्भ से कहानियां लिखते हैं। इनके कई संग्रह छप चुके हैं। ये आदर्श कहानीकार माने जाते हैं। इन्होंने अधिकतर सामाजिक कहानियां लिखी हैं। भाषा इन की परिमार्जित और सरल सुबोध होती है।

श्री सुदर्शन——जन्म १९५०। ये भी आदर्श कहानीकार हैं। इनकी उत्तम कहानियां हैं। इनके भी पात्र अधिकतर सामाजिक होते हैं। कुछ एक कहानियां इन्होंने राजनैतिक भी लिखी हैं। ये प्रकृष्ट गद्य लेखक हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र——जन्म १९५८। इन्होंने जब साहित्य में कहानीकार और छोटे छोटे उपन्यास लिखने प्रारम्भ किये थे तो धूम मचा दी थी। कहानी लिखने की, वर्णन करने की एक नयी शैली लेकर आये थे। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में [illegible] था। ये कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार हैं। इनके साहित्य में अधिकतर इन्होंने सामाजिक कुरीतियों और [illegible] का या समाज के पतित [illegible] [illegible] इनकी [illegible] और [illegible] [illegible] साहित्य [illegible] [illegible] [illegible] इनकी भाषा [illegible] [illegible]

[illegible] ये काशी [illegible]

का सौभाग्य था कि उसको आप जैसे धुरंधर सेवक मिले। हिन्दी इनसे गर्वान्वित है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा—ये इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में हैं। इन्होंने भाषा उसके साहित्य और भाषा विज्ञान के विषय में बड़े खोज पूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। भारतीय प्राचीन सभ्यता संस्कृति के इतिहास के विषय में भी इनकी गंभीर रिसर्च है। आपने प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति नाम का ग्रन्थ इस विषय में लिखा है।

इनके अतिरिक्त हिन्दी गद्य को अन्य असंख्य मार्मिक, शक्तिशाली लेखक मिले—जो अथक अनवरत परिश्रम करके हिन्दी के साहित्य में वृद्धि करते रहे। अब हिन्दी गद्य सर्वथा सम्पूर्ण और विकसित होकर राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन है, यह सब इन्हीं भक्त सेवकों की भक्ति का फल है।

प्रश्न—आधुनिक काल के पद्य-साहित्य पर एक विशद नोट लिखो, जिसमें उसकी विशेष प्रवृत्तियों का पता लगे।

उत्तर—पूर्व-परम्परा से प्राप्त ब्रज-भाषा काव्य भारतेन्दु के काल तक चलता है। उसके विषय, उस समय भी वे ही शृंगार, धर्म, नीति, प्रकृति-वर्णन, वस्तुशिल्प वर्णन आदि रीति कालीन ही रहे। कृष्ण लीला के भी गीत गाये जाते थे। उनमें कुछ पूर्व राजा लक्ष्मण सिंह ने ब्रज भाषा में कालिदास के कई ग्रन्थांशों का पद्यबद्ध अनुवाद किया। उनसे भी पहिले सरदार सेवक आदि हाल के ही कवि हुए थे। किन्तु वे लोग प्राचीन परिपाटी का ही निर्वाह कर रहे थे। नवीनता या आधुनिकता उनमें नहीं थी। राजा लक्ष्मण सिंह ने तो भला अनुवाद ही किये थे, उनमें तो नवीनता का प्रश्न ही नहीं। ब्रज भाषा में नवीनता का अवतार भारतेन्दु से ही होता है। भारतेन्दु अपने समय के साहित्य की केन्द्रीय आत्मा थे, उनकी छाप और प्रभाव साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में पड़े। ब्रज भाषा काव्य पर भी पड़ा। भारतेन्दु प्राचीनता के विरोधी नहीं थे, प्रत्युत उन्हें उसमें पर्याप्त अभिरुचि थी पर वे उसे नवीन समय और परिस्थिति के अनुरूप नवीन रूप में देखना चाहते थे। यही क्रम उनका ब्रज भाषा के प्रति भी था और उसमें प्रचलित काव्य पद्धति के प्रति भी था। उन्होंने उसको निबाहा

मजदूर, वकील बैरिस्टर और राजाओं जमींदारों तक ने इस आन्दोलन में भाग लिया। साहित्यिक भी भला कैसे बच सकता था? उसने सबसे आगे होकर स्वदेश और स्वराज्य के गान गाये। कहना नहीं होगा, इस विषय में नवीनता के कारण भी सर्व प्रथम भारतेन्दु ही हुए थे। अब खंत-धारा से बाहिर आने पर, सर्व प्रथम इन्होंने ही इस प्रकार का 'अन्तर्दृष्टि' मूलक राष्ट्रीय विचारों का काव्य लिखा, जिसमें स्पष्ट देश-प्रेम का विचार पाया है। भारतेन्दु केवल भावुक कवि ही नहीं थे, वे दूरदर्शी और स्वार्थ सुधारक भी थे। अतः विषयों की समस्या से लेकर वस्तुओं तक की उन्हें चिन्ता थी। इन सभी विषयों पर इन्होंने कविताएँ भी लिखी हैं। कवियों ने चोटें दीं, आत्मा को सूझी हुई, भ्रम में पड़ी हुई भारतीय जनता को चैतन्य करने का समय था, सो, इन सभी विषयों की अवतारणा उस समय की हिन्दी गद्य-भाषा में हुई, जिसके लिए हम पर वे ऋणवान हैं। भारतेन्दु के प्रभाव में अनेक ऐसे कवि हुए, जिन्होंने इस प्रकार की राष्ट्रीय कविताएँ दीं। यही बात्रा, क्योंकि इस समय कविता के लिए उपयुक्त समस्या आना था, इसलिए समस्या में ही सुधार करना पड़ा बहुत दिनों तक। समस्या पूर्ति में इस समय सभी विषयों पर कविताएँ हुईं। इसके साथ ही साथ देश का [illegible] हुआ कांग्रेस और इसके सम्बन्ध का भी वर्णन हुआ। किन्तु यह [illegible] समस्याओं और कवियों से आगे बढ़ नहीं हुआ बल्कि [illegible] हुआ। अवकाश की महत्ता भी यह है, [illegible] था। प्रधानता इस समय [illegible] था, जिसके लिए कवि विशेष उपयुक्त न होना [illegible] इस [illegible] के [illegible] अब और अधिकांश में काम [illegible] कविता में से बाद करना कम होता [illegible] नहीं उपयुक्त होता है, आत्मार्थिक अवश्यकता का ज्ञान [illegible] भारत में इस [illegible] हो ही है [illegible] हृदय का [illegible] है। [illegible]

मात्रिक छन्दों के अनेक नवीन रूपों का भी चलन हुआ। हिन्दी में गजलें भी लिखी गईं। प्रकृति वर्णन भी हुआ। पर प्रकृति को इस समय के ब्रज भाषा के कवियों ने भी उसके उद्दीपन विभाव के रूप में, केवल जड़ रूप में ही देखा, उसको सजीव नहीं देखा, जैसा कि बाद में प्रसाद, पन्त, निराला आदि ने। उन्होंने तो उसी प्राचीन ढर्रे बंधे रूप में, उसके स्थूल रूपों का सुन्दर और भव्य चित्र उतारा है। पर उसको स्वतन्त्र शक्तिमान का उसकी अनुभूति का अनुभव नहीं किया, जैसा कि बाद में प्रचलित प्रकृतिवाद में हुआ। उन लोगों ने प्रकृति को रसों की सहायिका उद्दीपन रूप में ही देखा, स्वतंत्र रूप में नहीं।

मुख्य मुख्य विशेषतायें ब्रजभाषा काव्य की आधुनिक काल में ये ही हैं। इनमें से अनेक विशेषतायें उसी रूप में खड़ी बोली काव्य में भी रहीं, या खड़ी बोली की काव्य धारा आगे विविध विकासों में बढ़ कर अपेक्षा नवीन रूप धारण कर लेती है, और ब्रजभाषा में लिखना उसके काल में प्रायः बन्द हो जाता है। वैसे, ब्रजभाषा में लिखने वाले लोग आज भी हैं और वे लिखते भी हैं, पर ब्रजभाषा का युग वस्तुतः रीतिकाल में ही समाप्त हो जाता है। उसके पश्चात् तो उसमें जो कुछ साहित्य बनता है, वह विशेषतया इसलिए बनता है कि खड़ी बोली उस समय पद्य काव्य के उपयुक्त नहीं होती और वह बनता भी तभी तक है, जब तक कि खड़ी बोली उसका स्थान लेने के योग्य नहीं हो जाती। फिर बन्द हो जाता है।

पर साहित्य में स्थान न रहने पर भी ब्रजभाषा का मरत्व कम नहीं हो जाता। यह तो उसके स्वभाव भाषाओं की स्वाभाविक गति है। ब्रजभाषा में इतना सुन्दर, इतना अमूल्य और इतने परिमाण में साहित्य भण्डार है कि उसका अध्ययन ऐसे ही किया जाता रहेगा, जैसे अब किया जाता है। वह भारत की प्रमुख साहित्यिक भाषा रह चुकी है, जिसका काल लगभग सात आठ सौ साल रहा और जिसके क्षेत्र का भी विस्तार बहुत दूर तक रहा। इसलिए भारतीय भाषाओं में ब्रजभाषा भी अपना महत्व रखेगी और अपना स्थान रखेगी। जब तक भारत में कृष्ण का नाम रहेगा, तब तक ब्रजभाषा भी बनी ही रहेगी।

बीसवेरी में एक अगह आप कहते हैं-कहाँ कलकत्तानिवि ! केसव ! सोइ !

जगत जाहिं अनेक जगत कहि आरतवासी रोये।

इसी प्रकार अजभाषा पद्यों में, इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बद्ध, स्वदेश, स्वभाषा, स्वजाति, स्वराज्य स्वधर्म और स्वसंस्कृति, अछूत, स्त्री, गरीब, दीक्षित, आदि पर लिखा है। अंग्रेजों की, अंग्रेजों के राज्य की निन्दा करके अनेक भावों को जगाया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत और बंगला के कई ग्रन्थों का भी अनुवाद किया है, जिनका एक भाग तो खड़ी बोली में अनूदित है और एक भाग अजभाषा में। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ कथा और इतिवृत्तात्मक ऐतिहासिक कथाओं के भी ग्रन्थ लिखे हैं।

[illegible] इन्होंने अनेक कविता अजभाषा में की। पुराना पद्धतियों का परित्याग नहीं किया, [illegible]

इतनी परिमार्जित अवस्था बाद के काल में ही आती है, भारतेन्दु काल में तो काव्य में प्रधानता ब्रज की ही रहती है। अधिकतर काव्य उसी में लिखे जाते हैं, हां खड़ी बोली में पद्य रचना प्रारम्भ हो जाती है। पर उनकी सामर्थ्य में सन्देह बना रहता है इनके काल में।

भारतेन्दु ने एक ही रस में नहीं लिखा। इन्होंने शृंगार, वीर, हास्य और करुण सभी समान सफलतापूर्वक लिखे हैं।

प्रश्न—भारतेन्दु के समय में या उनके बाद के अन्य ब्रजभाषा के कवियों का संक्षेप में यथा संभव सोदाहरण परिचय दो।

उत्तर—भारतेन्दु काल के और उनके बाद के कवियों का संक्षेप में परिचय नीचे दिया है।

पं० प्रताप नारायण मिश्र—ये भारतेन्दु के परम भक्त मित्र थे। उनके प्रभाव में इन्होंने भी ब्रजभाषा में सुन्दर कविताएँ की हैं। कविताओं के विषय भारत दुर्दशा या अन्य ऐसे ही राष्ट्रीय विचारों के साथ कुछ गोरक्षा आदि भी रखे हैं। गोरक्षा, बुढ़ापा, हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान, हरगंगा, तृप्यन्ताम् आदि इनकी ऐसी ही स्वतंत्र कविताएं हैं। इन्होंने हास्य रस भी सुन्दर सभ्यजनोचित लिखा है। ये अच्छे पढ़े लिखे संस्कृत के पण्डित थे।

प्रेमघन—इनका पूरा नाम पं० बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन था। ये भी स्वदेश और स्वराज्य की भावना रखते थे, पर वह इतनी उग्र नहीं थी। ये विशेष विशेष महत्व पूर्ण अवसरों पर, स्वतंत्र वर्णनात्मक स्तुतिपरक कविताएं लिखते थे। इन्होंने दादा भाई नैरोजी के असेम्बली के मेम्बर होने पर, विक्टोरिया की हीरक-जुबिली पर सुन्दर कविताएं लिखी हैं। इन्होंने भारत सौभाग्य नामक नाटक भी लिखा था, जिसका कविता-भाग बहुत सरस माना जाता है। उदाहरण:—

> नवो भूमि भारत में महाभयंकर भारत।
> भए वीरवर सकल सुमर एक ही मंत्र गारत ॥आदि॥

ठाकुर जगमोहन सिंह—ये भी भारतेन्दु जी के सहयोगी थे और

ब्रजभाषा में लिखते थे। इनका प्रकृति वर्णन संस्कृत के ढंग का सजीव और अत्यन्त उत्कृष्ट माना जाता है।

अम्बिका दत्त व्यास—इनका वर्णन गद्य भाग में हो चुका है। इन्होंने ब्रजभाषा पद्य लिखे हैं।

पं० श्रीधर पाठक—इन्होंने ब्रजभाषा में प्रकृति वर्णन बहुत सुन्दर और समय किया है। इन्होंने हिमालय वर्णन, कश्मीर वर्णन और ऋतु विषयक प्रकृति काव्य लिखे हैं, जिन में प्रकृति की सजीव मूर्ति, आत्मा का वर्णन किया है। भारतोत्थान और भारत प्रशंसा नामक काव्य इनके देश-भक्ति के काव्य हैं। एक नमूना:—

अनगिन पर्वत शिखर चहुं दिसि देत दिखाई।
सिर परसत आकाश बचन पाताल गुहाई ॥(हिमालय वर्णन)

सत्यनारायण कवि रत्न—ये ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे। कृष्ण भक्त थे। इन्होंने उषा राम चरित और माधवमिलाप का ब्रजभाषा में अनुवाद किया था। उदाहरण—

सब ओर जिसे तिल देखत हैं। वह मोहनी मूरति भाए रही।
चहुं दाहिन दीठ दसा में दुरुस्त अनूप दिखाई रही। आदि।

वियोगी हरि—आप सच्चे वर्णनकार हैं पर आपने कविता करनी छोड़ दी है। इन्होंने ब्रजभाषा में और खड़ी बोली दोनों में सुन्दर [illegible]

[illegible]

लिखा है। एक कविता में नेता की रेल के इंजन से समता की है दिखों की दृष्टि से। आप कहते हैं दिखों की तरह उनका चढ़ाई के (आपत्ति में , नेता को (दिखों की तरह) पीछे की धमोली है उतराई पर आगे को धकेलती है। उदाहरण:

परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन ॥
ताके मन्द मृदुल जगैयो ज्ञानप्यारी को ॥ आदि।

रामचन्द्र शुक्ल- ये हिंदी के प्रसिद्ध आचार्य थे, जो हिंदी के निर्माताओं में माने जाते हैं। इन्होंने बुद्ध-चरित नामक ग्रंथ भाषा लिखा है। इन्होंने इसमें करुण का सुन्दर चित्र खींचा है। इनका इस काव्य में ऐडविन का लाइट ऑफ एशिया था। इनका प्रकृति अद्भुत सुन्दर माना जाता है। उदाहरण:—

देखि परै सांवरे सलोने कहुँ गोरे मुख।
भृकुटी विशाल बक बरुनी बिछी है स्याम ॥ आदि

जगन्नाथ दास रत्नाकर—ये भारतेन्दु काल के थे और ब्रज में इतने भक्त थे कि सदैव उसी में कविता की। खड़ी बोली के आन्दो ये अग्रगामिन रहे। इनके ग्रन्थ हरिश्चन्द्र, गंगा लहरी, गंगावतरण उद्धव शतक हैं। इन्होंने शृंगार वीर भयानक, भक्ति आदि अनेक लिखा है और प्रकृति वर्णन भी सुन्दर किया है। उदाहरण:।

वीर अभिमन्यू की कृपाल कृपान बल।
सत्र असनी लौं चक्रव्यूह माहीं चमकी ॥

इन लोगों के अतिरिक्त गया प्रसाद शुक्ल सनेही, शंकर, पंडित नारायण चतुर्वेदी के नाम आते हैं, जिन्हों ने खड़ी बोली और ब्रज दोनों में कविता की हैं।

प्रश्न – खड़ी बोली के पद्य साहित्य पर एक ऐतिहासिक और विवेचनात्मक विवरण दो।

उत्तर—वैसे, सींचातानी कर के तो हम खड़ी बोली के पद्य-साहित्य इतिहास को बहुत दूर तक खींच कर ले जा सकते हैं। कबीर नुसरो की इसी भाषा का पूर्वरूप मानी जा सकती है। आधुनिक काल में पहिले।

या विकासों को अपने बृहत् साहित्य-गर्भ में समाये खड़ी बोली इस समय राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन है। अभी यह सब उन्नति या विकास इन थोड़े से पिछले ५०–६० सालों में ही हुई है। अतः समझा जा सकता है कितनी तेजी से खड़ी बोली साहित्य उन्नति के पथ पर बढ़ा है। उसका समग्र दर्शन एक ही साँस में नहीं हो सकता। उसकी गति विभिन्न दशाओं के आधार पर, उसे यदि कई समयों में विभक्त कर लिया जाय, तभी उसकी बातों का समुचित और क्रमिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस लिए थोड़े में और स्पष्ट रूप में खड़ी बोली के पद्य साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे चार उत्थानों (या कालों) में बाँट लिया जाता है।

प्रथम उत्थान, भारतेन्दु काल से प्रारम्भ होकर तब तक चलता है जबतक साहित्य क्षेत्र में द्विवेदी जी का प्रभाव नहीं पड़ता। भारतेन्दु के पश्चात् कुछ दिन वे ही प्रवृत्तियाँ काव्य में चलती रहीं। यह प्रथम उत्थान का काल खड़ी बोली पद्य साहित्य का शैशव काल है। इस में खड़ी बोली में पद्य रचना प्रारम्भ हो जाती है और उस में अनेक विषयों पर फुटकल [illegible] कविताएं लिखी जाती हैं। पद्य में ब्रज भाषा की ही प्रधानता रहती है, इस काल में खड़ी बोली में पद्य रचना दो तीन रूपों में प्रचलित होती है। कुछ तो उर्दू की गज़लों आदि के ढंग के छन्दों में खड़ी बोली लिखी गई। भारतेन्दु ने स्वयं भी लिखी, उन के मित्रों ने भी लिखी। कुछ कविगण प्राचीन काव्य पद्धति के कवित्त सवैया दोहा आदि छन्दों में लिखी गई। कुछ व्याख्यान और कहानियों के ढंग में भी खड़ी बोली की रचना लिखी गई। [illegible] समय में व्याख्यान और [illegible] भी बढ़ा [illegible] भारतेन्दु [illegible] भी व्याख्यान और कहानियां लिखी और [illegible] में खड़ी बोली [illegible] था। [illegible] खड़ी बोली को [illegible] में स्थान [illegible] खड़ी बोली का [illegible] प्रवाह [illegible] हिन्दी [illegible] और [illegible] और

मुश्किल नहीं था। दूसरे, इस बोली में भावों के व्यक्त करने की ऐसी ही लम्बी चौड़ी और वर्णन के विषय भी असाधारण होते हैं। अतएव उस में कवि बोली के चलन में कोई बाधा नहीं पड़ी, पर काव्य के कठिन छन्द बन्धन में कड़ी बोली को उस समय अविकसित दशा में डालना कठिन था, साधारण विषयों के वर्णन में भी कठिनाई लगती थी। अतएव भारतेन्दु काल में कड़ी बोली पद्य रचना के उपयुक्त विषय वर्णनात्मक ही रहे। भारतेन्दु के पश्चात् स्वदेशी और स्वदेश के आन्दोलन के साथ (स्व भाषा) कड़ी बोली का भी आन्दोलन चलता है, जो आशातीत सफलता प्राप्त करता है।

द्विवेदी जी के काल को कड़ी बोली पद्य रचना का द्वितीय उत्थान काल कहा जा सकता है। इन दोनों ही कालों में समय का कोई विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर केवल प्रवृत्तियों और विकास का है भारतेन्दु काल की अनेक प्रवृत्तियों में से जो समय के अनुकूल थीं, उनका द्विवेदी काल में पूर्ण विकास हुआ और जो समय के अनुकूल नहीं समझी गईं, उनका त्याग हुआ। इस काल की भाषा की ऐसी ही प्रवृत्ति थी, जो समय के अनुकूल होने से शीघ्र ही काव्य में विविध सामयिक विषयों का समावेश करने की प्रवृत्ति का उदय हुआ, और उनका सूत्र पात हुआ। इसी प्रकार अन्य प्रवृत्तियों का भी है। उन में से अनेक का द्विवेदी काल में पूर्ण विकास पाते हैं।

[illegible]

एक बार तो उस रचना या काव्य रचना की बाढ़ सी आ जाती है खड़ी बोली में, जब कि उसमें से विविध शाखाएँ फूटने लगती हैं। द्विवेदी काल की मुख्य प्रवृत्तियाँ यहीं समाप्त हो जाती हैं। अब आगे उसका (खड़ी बोली रचना का) विकास काल आता है, जब वह पूर्ण परिपुष्ट हो विविध शाखाओं और रूपों में विकसित होती है। द्विवेदी जी स्वयं प्राचीनता के परम भक्त थे, पर उसे ऐसा रूप देना चाहते थे, जो आधुनिक काल के अनुसार परिवर्तित हो, पर जिसका मूल आधार प्राचीन भारतीय ही हो। इस बात में वे भारतेन्दु जी के समान ही थे। वे नव विकास के भी विरोधी नहीं थे। पर उसे प्राचीनता से सर्वथा पृथक् या विरुद्ध नहीं चाहते थे। अतएव उनका काल तभी तक वस्तुतः रहता है जब तक हिन्दी काव्य पूर्ण परिपुष्ट हो विकसित नहीं होने लगता। उनका उद्देश्य भी हिन्दी साहित्य को समर्थ परिपुष्ट और व्यवस्थित करने का ही था, जो उनके प्रभाव काल में पूर्णतया सिद्ध हुआ। वैसे तो हिन्दी के सौभाग्य से वे बहुत दिनों जीवित रहे और अपने प्रयत्नों को फलता देखकर सन्तोष प्राप्त करते रहे, पर उनका कार्य-काल वस्तुतः तभी समाप्त हो जाता है, जब खड़ी बोली का रूप स्थिर तथा स्थिर हो जाता है और उसका साहित्य या काव्य पुष्ट हो जाता है। उनके काल में भी काव्य शैली अधिकतर वर्णनात्मक ही रही, विविध ऐतिहासिक या धार्मिक पौराणिक कथानकों का खड़ी बोली पद्यों में वर्णन हुआ। प्रबन्ध काव्य या कथा काव्यों में बीच २ में ऐसे स्थल भी अवश्य हैं जो उत्तम भाव प्रधान कविता बनी है, पर स्वतन्त्र भाव तत्व को लेकर कविता नहीं हुई, जैसा कि बाद के काल में अंग्रेजी की लीरिक कविता के ढंग पर हुआ। द्विवेदी काल वस्तुतः हिन्दी काव्य में, व्यवस्था और परिपोषण का काल है, जिसमें प्राचीन रूढ़ियों को आधुनिक रूप देकर या व्यर्थताको छोड़कर उनको निभाने का प्रयत्न किया गया है। इस काल के अनन्तर ही नवीन काल या विकास काल प्रारम्भ होता है, जिसमें हिन्दी काव्य शैलियों विकास के साथ २ विषयों में भी परिवर्तन होता है और समाज के और काव्य के दृष्टिकोण में भी भारी अन्तर आता है। यह द्विवेदी काल का उत्तर काल या तृतीय उत्थान कहा जा सकता है।

का ग्रहण होता है, भाव व्यंजना की विधि बदलती है और काव्य रचना के सिद्धान्त भी बदलते हैं। कवि का दृष्टिकोण भी बदलता है। अब उसे आत्मा या परमात्मा की अनुभूति में, या बड़े २ ऐतिहासिक व्यक्तियों के वर्णन में रुचि नहीं है। अब वह साधारण और प्राकृत पीड़ित जन के दर्शन की ओर ध्यान देता है। व्यक्ति का उसके लिए विशेष महत्व हो जाता है। व्यक्तिगत मन की भावनाओं का चित्रण उसके लिए अधिक सरल होता है। शृंगार का स्थान करुणा और भक्ति का स्थान मानव प्रेम ले लेता है। कवि एक ओर रहस्यवाद के अनुसरण में कल्पनालोक या छायालोक की भी सैर करता है और दूसरी ओर नई श्री के प्रभाव में वस्तुवादी बनता है। राजनीति और समाज के इस उथल पुथल और संघर्ष के युग में हिन्दी साहित्य भी विविध शैलियों में से और विचारधाराओं में से निकलता हुआ अपने इस समय का रूप धारण करता है। अभी यह विकास काल ही चल रहा है और अब तक इसमें रहस्यवाद, छायावाद, वस्तुवाद, हालावाद, भावावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि अनेक वाद आ चुके हैं। इस विकास की प्रक्रिया में आगे क्या परिवर्तन होगा, यह कहना तो कठिन है, पर विषय और दृष्टिकोण के विचार से स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ, पुराना आधुनिक काल समाप्त हो जाता है और नवीन काल या स्वतन्त्रता-काल प्रारम्भ हो जाता है।

हिन्दी का नया बीसवीं शती साहित्य या काव्य साहित्य इस समय बहुत बड़ा हुआ है। जिसकी अवनति और रूढ़ि का कोई पारावार नहीं है, जिसमें से अनेक सरिताएँ, सागर निकल रहे हैं और छोटे मोटे प्रवाहों का तो अन्त ही नहीं है। आगे भी प्रवाह किधर बहता है और कह सकता है!

प्रश्न—बच्चन से समकालीन आधुनिक काल के अन्य बीसवीं शती साहित्य की प्रवृत्तियों का वर्णन करो।

उत्तर आधुनिक काल या आधुनिक काल के अन्य बीसवीं शती साहित्य में निम्न लिखित [illegible]

[illegible]

१६ प्रकृति वर्णन में विशेषता आती है, प्रकृति को कवि जड़ मूक नहीं समझता। प्रत्युत, अब वह उसके स्थूल सौन्दर्य में निहित आन्तरिक चैतन्य शक्ति का भी दर्शन करके विमुग्ध होता है। प्रकृति उसके लिये अब स्वतंत्र विषय बन जाती है।

१३. संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं के काव्यों का अनुवाद भी होता है और मौलिक रचना भी होती है।

१४ काव्य कला की संस्कृत अंग्रेजी आदि प्रमुख भाषाओं के साहित्य के आधार पर वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक ढंग में व्याख्या आलोचना विवेचन आदि होते हैं।

आदि आदि इस पद्य साहित्य की मुख्य विशेषताएं हैं।

प्रश्न हिन्दी के आधुनिक पद्य साहित्य में या काव्य साहित्य में अभिव्यंजनावाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि वादों का संक्षेप में परिचय दो।

उत्तर—इन वादों के विकास में गांधी जी और रवीन्द्र जैसे महापुरुषों का विशेष प्रभाव पड़ा है। गांधीजी कर्मठ व्यक्तिवादी या यथार्थवादी होते हुए भी एक महान रहस्यवादी थे। यह उनकी गीता की आध्यात्मपरक व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है। उनका समस्त विशाल कार्यकलाप एक रहस्यमय आन्तरिक प्रेरणा के इंगित पर होता था। इसे वे स्वीकार भी करते थे। और रवीन्द्र ने तो अंग्रेजी कविता में प्रकाशित हो उसी शैली में गीतांजलि आदि की रचना की थी। नोबल पुरस्कार मिलने के पश्चात् तो उनकी शैली का मूल्य ही अधिक हुआ। फलतः इन दोनों ही महान् व्यक्तियों के प्रभाव से स्वतन्त्र हिन्दी में भी रहस्यवाद और छायावाद का जन्म होता है

छायावाद रहस्यवाद - [illegible]

कुछ ही भेद है। छायावाद में कवि अपनी आत्मा के ही प्रतीक या छाया की अनुभूति करता है और रहस्यवाद में कवि जगत् में अनन्त परमात्मतत्त्व को छाया या प्रतीक देखता है। छाया या प्रतीक का दोनों दर्शन करते हैं, अनुभूति का प्रकार भी समान है दोनों में, अन्तर केवल विषय (आत्मा और परमात्मा) के अनुसार पड़ता है। छायावादी सान्त (अपनी आत्मा) की अनुभूति करता है, दूसरा अनन्त की।

इन दोनों ही रूपों में भगवान् की उपासना भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती है। ज्ञानोपासना में एक ही ब्रह्म की सर्वत्र चर अचर जगत् में अनुभूति की जाती है और भक्ति मार्ग में अनन्त की राम कृष्ण रूप में सान्त कल्पना कर (अपनी आत्मा की दशा के अनुकूल) उसकी अनुभूति की जाती है। अतएव भक्ति मार्ग को प्रतीकोपासना भी कहा जाता है। उपनिषदों में ऐसे वर्णन बहुत मिलेंगे, जिन्हें हम निस्संकोच रहस्यवाद और छायावाद की परिधि में ला सकते हैं। अतएव यह कहना कि इन वादों का परिचय अंग्रेज़ों से ही मिला, गलत है, हाँ आधुनिक युग में चलन इनका अंग्रेज़ों के अनुकरण पर हुआ और इनको शैली आदि को भी आधुनिक रूप में कल्पना अंग्रेज़ी कविता के प्रभाव में हुई। परन्तु इस प्रकार की वर्णन पद्धति भारतीय साहित्य में प्रारम्भ से चली आई है। कबीर और जायसी के साहित्यों में बहुत छायावाद और रहस्यवाद मिलता है। प्रसाद जी पर तो निर्विवाद रूप से कबीर और उपनिषदों के रहस्य भाव का प्रभाव पड़ा था। इस प्रकार, ये दोनों शैलियाँ आधुनिक रूप में अंग्रेज़ों से प्राप्त होने पर भी, रूप भेद से भारत के साहित्य में प्रथमतः विद्यमान् थीं।

वस्तुवाद या यथार्थवाद वस्तु स्थिति के वर्णन से होता है। कवि कल्पना को उड़ानें भरकर स्वप्नलोक में विचरण नहीं करता, अपितु इसी दुनिया की बात करता है। दुनिया के केवल आनन्द ही का वर्णन नहीं करता, अपितु उसके दुःख आपत्तियों का भी वह वर्णन करता है, जो जीवन में अधिक हैं। यह वस्तु स्थिति के वर्णन करने की शैली को यथार्थ-वाद कहते हैं। इसमें कवि का आधार निरी कल्पना न होकर जीवन के कठोर सत्य होते हैं।

के लिए प्रगति (मार्क्स) का बिगुल फूंकता है। वह वर्तमान संसार व्यवस्था, जिसमें ऊँच नीच का भेद मिटकर समानता नहीं आ सकती, में कोई परिवर्तन संभव नहीं समझता। अतएव उसका ध्वंस ही इलाज समझता है। पश्चात भविष्य के सुख संसार का निर्माण करना चाहता है, जिसमें निर्धन मजदूरों की आवाज प्रबल होगी और कोई ऊँचा नहीं होगा, सब समान सुखी या दुःखी होंगे। स्पष्ट ही साहित्य में यह धारा राजनीति में समाजवादी विचारों के फलस्वरूप चली। इसमें जहां उग्रता या क्रांति की मात्रा अधिक है वहां और भी अधिक वाम पक्षीय (Leftist) कम्यूनिस्टों का प्रभाव मानिये। वहां कवि संसार में आग लगाकर साम्यवाद के आधार पर नव निर्माण करने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं देखता। वह उसी में शिव का मंगल देखता है।

इन्हीं के साथ एक और वाद भी चलता है जिसे कलावाद कह सकते हैं। महादेवी वर्मा का साहित्य इसका अच्छा उदाहरण है। इस वाद में कवि का ध्यान अधिक करुण रस में ही आनन्द पाता है। वह संसार में सर्वत्र करुणा ही करुणा देखता है और उसी की अनुभूति में उसका आनन्द मिलता है। संस्कृत में ऐसे कवि अवभूति थे, जो करुणा का हीरस मानते थे। इनका मत था करुण ही एक रस शृंगार आदि विविध रसों का रूप ग्रहण करता है, जैसे एक ही जल विविध फलों के गंधों में विविध रूपों का ग्रहण कर लेता है। हिन्दी में यह वाद या प्रवृत्ति चंद्रमा के अनुकरण पर ही आया है पर यह सिद्धान्त बड़ा पुराना। बौद्ध सिद्धान्त भी संसार में दुःख ही अधिक मानता है सुखको दुःख का अभाव माना जाता है। वेदान्त में भी दुःख बाद को एवादा सिद्धान्त माना है हिन्दी काव्यमें भी ऐसा वाद चला, जिसने कविता में करुण का [illegible] और उसका [illegible]

घड़ा बनाने का कवि

[illegible]

परिशीलन से मिली थी, जिसके ये पण्डित थे और जिसमें संस्कृत वृत्त प्रणाली का अधिक उपयोग हुआ है। द्विवेदी जी आचार्य पहिले थे। कवि पीछे। अतएव इनकी कविताओं में भाषा-परिष्कार और काव्य-चातुर्य अधिक है और कवित्व अपेक्षाकृत कम है। इनकी कविताएं काव्य-मंजूषा और सुमन नामक दो संग्रह ग्रन्थों में संग्रहीत मिलती हैं। एक उदाहरण—

सूर्यवान मंजुल शैया पर पहिले निशा बिताता था।
सुयश और मंगल गीतों से प्रात जगाया जाता था। आदि।

मैथिली शरण गुप्त—इनका कविता काल १९१३ में सरस्वती में प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। द्विवेदी जी की प्रेरणा और उत्साह से इनकी अधिक से अधिक और सुन्दर से सुन्दर रचनाएं निकलने लगीं। इन्होंने कई खण्ड काव्य, छोटे प्रबन्ध काव्य और महाकाव्य लिखे हैं। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनका भारत भारती नामक काव्य हुआ था जिसमें भारत की या हिन्दुओं की भूत और वर्तमान अवस्था का करुणोद्वेजक अन्तर दिखाया गया है। इसी के आधार पर इन्हें राष्ट्रीय कवि की भी उपाधि मिली है। इन पर गांधी जी का विशेष प्रभाव पड़ा था और ये उनके अनन्य भक्त हैं। इन्होंने रंग में भंग, जयद्रथ वध, विकट भट, पलासी का युद्ध, गुरुकुल, किसान, पंचवटी, यशोधरा आदि काव्य और खण्डकाव्य लिखे हैं। इनका अतिरिक्त साकेत नामक महाकाव्य भी लिखा है, जिसमें राम कथानक का चित्रण है। रामचरितमानस से विशेषता यह है कि इन्होंने लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला और भरत की पत्नी का विशेष विस्तृत और सजीव वर्णन किया है। राम चरित्र लिखने वाले अन्य सब लेखकों ने इनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनघ, तिलोत्तमा, चन्द्रहास नामक तीन रूपक काव्य और कुछ रहस्यपूर्ण गीत भी लिखे हैं। आजकल ये चिरगांव झांसी में शान्ति में अपना साधना में निरत हैं। उदाहरण—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी॥

नाथूराम शंकर—ये अज भाषा और खड़ी बोली में लिखते थे।

ये जितने कवि थे, उतने ही भाषा और काव्य के मर्मज्ञ आचार्य भी थे। इन्होंने एक बोलचाल नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जिसमें खड़ी बोली में प्रचलित समस्त मुहावरों और लोकोक्तियों का इन्होंने खड़ी बोली पद्यों में प्रयोग किया है। उदाहरण—

दिवस का अवसान समीप था गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

सियाराम शरण गुप्त—जन्म १९५७ वि०। ये श्री मैथिलीशरण जी के छोटे भाई हैं। स्पष्ट ही इनको अपने बड़े भाई और आचार्य द्विवेदी जी से पर्याप्त प्रो साहस नेतृत्व मिला। इन्होंने अत्यन्त सुन्दर फुटकल कविताएँ लिखी हैं, जिनका संग्रह आर्द्रा, दूर्वादल और विषाद नामक संग्रहों में हुआ है। इनके अतिरिक्त अनाथ, मौर्य विजय नामक छोटे काव्य भी लिखे हैं। उदाहरण—

मैंने हुआ विरव भर मेरा, हाय कहां अब जाऊं मैं? आदि।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी—ये १९४१ वि० में जन्मे थे, और अभी कलकत्ता के विशाल भारत मासिक का सम्पादन कर रहे हैं। ये सक्रिय राष्ट्रवादी हैं। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इन्होंने पूरा भाग लिया था। माधवराव सप्रे के सहयोग में एक कर्मवीर नामक पत्र भी निकाला था। बलिदान, उन्मूलित वृक्ष, सिपाही आदि अनेक इनकी उच्चकोटि की राष्ट्रीय रचनाएं हैं। ये कवि होने के साथ सफल सम्पादक भी हैं। उदाहरण—

अजय रूप धर कर आये हो, कवि कह तू या नाम कहूँ।
रमण कहूँ या रमणी कह तू, रमा कहूँ या राम कहूँ॥

रामनरेश त्रिपाठी—इन्होंने राष्ट्रीय कविताएं अधिक लिखी हैं। इनके अतिरिक्त मिलन, पथिक, स्वप्न नामक स्वतंत्र काव्य भी लिखे हैं। इनकी कविता सरस और सरल है। उदाहरण—

मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के सदन में॥ आदि।

उत्तर—द्विवेदी जी के काल में, खड़ी बोली पद्य में रचना तो बहुत होने लगी थी, पर उसमें इति-वृत्तात्मकता (वर्णन शैली) अधिक थी। कवि भाषा को शुद्ध परिमार्जित रूप में छन्द में बिठा कर अपने को कृत कृत्य समझने लगा था, भाव पक्ष कमजोर और ओढ़ा जाता था, अधिक किया कवि की भाषा की रहती थी। कुल स्वरूप लोग खड़ी बोली की अधिकांश कविताओं को कोरी तुक-बन्दी मात्र मानने लगे थे। काव्य के विकास का इस प्रकार अवरोध सा हो जाने पर, प्राचीन प्रचलित काव्य-पद्धति से असन्तुष्ट होकर उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप बंगला और अंग्रेजी के अनुकरण पर काव्य में नवीन कई शैलियों का विकास होता है, जो छायावाद आदि नामों से प्रसिद्ध हुईं। इस पद्धति के कवियों में सर्व प्रथम बा० जय शंकर प्रसाद जी का नाम आता है।

बा० जय शंकर प्रसाद—छायावाद और रहस्यवाद के ये सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं, जिनका आदर्श आगे के अनेक कवियों ने ग्रहण किया। इनका काल १९४६—१९९२ है। ये काशी में रहते थे। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने पर और घर का भार पड़ जाने के बाद भी आपने संस्कृत प्राकृत, फारसी अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था। ये प्रारंभ से भावुक और कवि थे। प्राचीन भारतीय साहित्य देखने और अनेक आपत्तियों को झेलने से इनका आध्यात्मिक विश्वास जागृत हो गई थी। अतएव इनकी रचनाओं में भी आध्यात्मिक रहस्य वाद का आभास ही अधिक मिलता है। इन्होंने सब प्रथम खड़ी बोली में संस्कृत के ढंग पर अनुकाव्य कविता लिखी थी। इनकी रचनाएं काव्य कुसुम प्रेम पथिक आंसू चन्द्र गुप्त और

(illegible)

उत्तर—द्विवेदी जी के काल में, खड़ी बोली पद्य में रचना तो बहुत होने लगी थी, पर उसमें इति-वृत्तात्मकता (वर्णन शैली) अधिक थी। कवि भाषा को शुद्ध परिमार्जित रूप में छन्द में बिठा कर अपने को कृत कृत्य समझने लगा था, भाव पक्ष कमजोर और थोड़ा आता था, अधिक चिन्ता कवि को भाषा की रहती थी। फल स्वरूप लोग खड़ी बोली की अधिकांश कविताओं को कोरी तुक-बन्दी मात्र मानने लगे थे। काव्य के विकास का इस प्रकार अवरोध सा हो जाने पर, प्राचीन प्रचलित काव्य-पद्धति से असन्तुष्ट होकर उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप बंगला और अंग्रेजी के अनुकरण पर काव्य में नवीन कई शैलियों का विकास होता है, जो छायावाद आदि नामों से प्रसिद्ध हुईं। इस पद्धति के कवियों में सर्व प्रथम बा० जय शंकर प्रसाद जी का नाम आता है।

बा० जय शंकर प्रसाद—छाया और रहस्य वाद के ये सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं, जिनका आदर्श आगे के नवीन कवियों ने ग्रहण किया। इनका काल १९२७—१९६५ है। ये काशी में रहते थे। बचपन में ही पिता की मृत्यु हो जाने पर और घर का भार पड़ जाने के बाद भी आपने संस्कृत प्राकृत, फारसी अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था। ये प्रारंभ से भावुक और कवि थे। प्राचीन भारतीय साहित्य देखने और अनेक आपत्तियों को भोगने से इनकी आध्यात्मिक पिपासा जागृत हो गई थी। अतएव इनकी रचनाओं में भी आध्यात्मिक रहस्य वाद की मात्रा ही अधिक मिलती है। इन्होंने सर्व प्रथम खड़ी बोली में संस्कृत के ढंग पर अनुकान्त कविता लिखी थी। इनकी रचनाएं कानन कुसुम, प्रेम पथिक, सम्राट चन्द्र गुप्त मौर्य (नाटक) अजात शत्रु, स्कन्द गुप्त, (नाटक) तितली (उपन्यास) राज श्री आदि अनेक हैं। ये एक उत्तम कोटि के भावुक कवि होने के साथ साथ अच्छे नाटक कार और उपन्यास लेखक भी थे। उदाहरण —

भरा नैनों में मन में रूप, बिसुधि बुधियों का अमल अनूप। आदि।

सूर्य कान्त त्रिपाठी निराला- जन्म संवत् १९५६। स्थान उन्नाव जिला। इन्होंने भी छायावाद रहस्यवाद में लिखा है। अंग्रेजों के ढंग के गद्य गीत

आपने कुछ वर्णनात्मक काव्य रचनाएं लिखीं, वीर हम्मीर, कुछ वि चित्तौड़ और चित्तौड़ की चिता, इनकी ऐसी ही वर्णनात्मक शैली की रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त अंजलि, अभिशाप, चित्रोत्सव, अश्रु विशेष आदि नवीन शैली की भाव प्रधान रचनाएं लिखीं, जो मुख्यतः वाणी और प्रकृति वर्णन की कविताएं हैं। प्रकृति वर्णन इनका परम्प रिक और प्रकृति की नवीन अदृश्य छाया लिये है। उदाहरणः—

हृदय एक है उसमें कितनी ओर लगी है आग,
बने शान्त करने को लोचन अश्रु रहे हैं त्याग। आदि।

सुभद्राकुमारी चौहान—ये यद्यपि छाया वादी युग में आईं, किन्तु इसी काल की वस्तुवादी नवीन धारा की कवियित्री हैं। कविताओं में यथार्थ का सरल सुन्दर सरस और स्वाभाविक चित्रण हुआ इन्होंने अधिकतर राष्ट्रीय, वीर रस की, और वात्सल्य रस की कविता लिखी हैं। वीर रस की कविताएं इनकी जितनी ओजस्विनी हैं वात्सल्य और करुण रस की कविताएं इनकी उतनी ही मधुर और होती हैं। इनकी भी वर्णनात्मक और भावात्मक दोनों शैलियों में लिखी इनकी वीर रस की झांसी वाली रानी नामक कविता वर्णनात्मक है उदाहरण —

[illegible]